सितम्बर, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – अपराध के संघटक – साक्ष्य अधिनियम के अधीन उपधारणा – दहेज की मांग को लेकर पत्नी को तंग किया जाना और विवाह के सात मास के भीतर उसकी हत्या किया जाना – दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन से यह स्पष्ट होने पर कि मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर दाह क्षतियों के कारण अर्थात् सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और उसे उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज के लिए मांग भी किया था, ऐसी स्थिति में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

देविन्दर सिंह बनाम **पंजाब राज्य** 445

संसद् के अधिनियम

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (12) क्रमशः

पृष्ठ संख्या **313 – 466** **[2014] 3 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – सितम्बर, 2014 [पृष्ठ संख्या 313 – 466]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

सितम्बर, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आर. जी. नदादूर और अन्य **बनाम** शुभोदय विद्या समस्थे और एक अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 387)	
कर्नाटक राज्य और एक अन्य **बनाम** एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ (गवर्नमेंट रिकग्नाइज़ड-अनएडेड-इंग्लिश मीडियम) प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स और अन्य	387
कर्नाटक राज्य और अन्य **बनाम** मोहम्मद हुसैन जुका (देखिए – पृष्ठ संख्या 387)	
गुजरात राज्य **बनाम** किशनभाई	313
चेरूकुरी मणि पत्नी नरेन्द्र चौधरी **बनाम** मुख्य सचिव, आन्ध्र प्रदेश सरकार और अन्य	434
देविन्दर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य	445
नल्लूर प्रसाद और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 387)	
बलविंदर सिंह **बनाम** नेशनल फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड और अन्य	456
राजस्थान राज्य **बनाम** मनोज कुमार	374
विनोद कुमार **बनाम** केरल राज्य	358

संसद् के अधिनियम

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (12)

पृष्ठ संख्या

आन्ध्र प्रदेश प्रिवेंशन आफ डेंजेरस एक्टीविटीज़ आफ बूटलैगर्स, डकैत, ड्रग अफेंडर्स, गुंडाज़, इम्मोरल ट्रेफिक अफेंडर्स एंड लैंड ग्रेबर्स ऐक्ट, 1986

– धारा 3 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 22(5)] – निवारक निरोध – वैधता – किसी व्यक्ति को एक ही बार में बारह मास की अवधि के लिए निरुद्ध करने का निदेश देने वाला निरोध आदेश अविधिमान्य और अवैध है ।

चेरूकुरी मणि पत्नी नरेन्द्र चौधरी बनाम **मुख्य सचिव, आन्ध्र प्रदेश सरकार और अन्य** 434

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 154 – प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराए जाने में 7 घंटों का अव्यक्त विलंब – अस्पष्ट अभियोजन पक्षकथन को संदिग्ध बनाता है – जिसके आधार पर दोषसिद्धि को उलटते हुए दोषमुक्ति की गई ।

गुजरात राज्य बनाम **किशनभाई** 313

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302, 304 और 97 – हत्या – शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा अभियुक्त के भूखंड पर कब्जे किए जाने की आशंका – प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए अभियुक्त द्वारा गोली चलाना – अधिकार का अतिक्रमण – चूंकि अपीलार्थी ने मृतक की मृत्यु कारित करने के आशय से नहीं अपितु भूखंड की रक्षा के लिए गोली चलाई थी और उसमें प्रतिशोध की कोई भावना नहीं थी, किन्तु आवश्यकता से अधिक क्षति कारित करने के कारण वह धारा 304 भाग-I के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

राजस्थान राज्य बनाम **मनोज कुमार** 374

पृष्ठ संख्या

– धारा 302, 304 और 34 – हत्या – सामान्य आशय – धारा 34 केवल वहां लागू होगी जहां सामान्य आशय को अग्रसर करने में अनेक व्यक्तियों द्वारा आपराधिक कार्य किया गया हो, सह-अभियुक्त केवल मुख्य अभियुक्त के साथ कब्जे के अधिकार की प्रतिरक्षा के लिए गए थे, अतः उनकी दोषसिद्धि धारा 34 के अधीन नहीं की जा सकती ।

राजस्थान राज्य बनाम **मनोज कुमार** 374

– धारा 304ख [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – अपराध के संघटक – साक्ष्य अधिनियम के अधीन उपधारणा – दहेज की मांग को लेकर पत्नी को तंग किया जाना और विवाह के सात मास के भीतर उसकी हत्या किया जाना – दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन से यह स्पष्ट होने पर कि मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर दाह क्षतियों के कारण अर्थात् सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और उसे उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज के लिए मांग भी किया था, ऐसी स्थिति में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

देविन्दर सिंह बनाम **पंजाब राज्य** 445

– धारा 363, 369, 376, 394, 302 और 201 [सपठित मुम्बई पुलिस अधिनियम, 1951 – धारा 135(1)] – छह वर्ष की बालिका का अपहरण – अभियुक्त द्वारा उससे बलात्संग करने के पश्चात् हत्या करना – बालिका की ऐड़ी के ऊपर से पैर काटते हुए उसके कड़ों को चुराना – अभियुक्त बालिका के साथ अंतिम बार देखा गया – सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्त को मृत्यु दंड देना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना तथा राज्य द्वारा उच्च

पृष्ठ संख्या

न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करना – युक्तियुक्त संदेह से परे मामला साबित न होने पर उच्च न्यायालय का दोषमुक्ति का निर्णय मान्य ठहराते हुए राज्य की अपील खारिज की गई ।

गुजरात राज्य बनाम **किशनभाई** 313

– धारा 376 और 90 – बलात्संग – सम्मति – विवाहित अपीलार्थी द्वारा अभियोक्त्री के साथ उसकी सम्मति से संबंध बनाना – सम्मति का उचित पाया जाना – अभियोक्त्री को यह मालूम था कि अपीलार्थी पहले से ही विवाहित था किन्तु अभियोक्त्री के धर्म के अनुसार बहु-पत्नीक संबंध कोई अभिशाप नहीं था और अपीलार्थी द्वारा उसे विलुब्ध भी नहीं किया गया था तथा वह अपीलार्थी के साथ घर-परिवार चलाने को इच्छुक थी, इस आधार पर बलात्संग के अपराध के लिए निचले दोनों न्यायालयों द्वारा की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि अनुचित होगी ।

विनोद कुमार बनाम **केरल राज्य** 358

– धारा 376, 363, 369, 394, 302 और 201 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 155, 156 और 157] – छह वर्ष की बालिका की बलात्संग करने के पश्चात् हत्या किया जाना – अभियोजन अधिकारियों की चूक और अन्वेषण में कमियों के कारण अभियुक्त को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया जाना उच्चतम न्यायालय द्वारा सभी राज्यों के गृह सचिवों की उनके राज्यों में अन्वेषण में त्रुटियां और लापरवाही करने वाले अन्वेषण और अभियोजन अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने का निदेश दिया गया कि छह माह के भीतर ऐसी प्रक्रिया को अपनाया जाए जो गंभीर मामलों में पूर्णतया प्रशिक्षित अन्वेषण अधिकारियों द्वारा ही अन्वेषण और अभियोजन किए जाने को सुनिश्चित करे ।

गुजरात राज्य बनाम **किशनभाई** 313

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 29, 30 और 350क – अल्पसंख्यक-वर्गों के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम – मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अधिरोपित करना – अल्पसंख्यक-वर्ग के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा अधिरोपित करना अनुच्छेद 30 का अतिक्रमणकारी है क्योंकि अल्पसंख्यक-वर्ग की रुचि को अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा में शिक्षा देने तक सीमित करने की आवश्यकता नहीं है और अनुच्छेद 350क के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा लागू करने की बाध्यता अधिरोपित नहीं की जा सकती है ।

कर्नाटक राज्य और एक अन्य बनाम **एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ (गवर्नमेंट रिकग्नाइज़ड-अनएडेड-इंग्लिश मीडियम) प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स और अन्य** 387

– अनुच्छेद 19(1)(क), 21 और 21क – वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य – प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम का चयन करने संबंधी बालक का अधिकार – शिक्षा के माध्यम का चयन करने संबंधी बालक का अधिकार अनुच्छेद 19(1)(क) द्वारा प्रत्याभूत वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से न कि अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क से व्युत्पन्न होता है और राज्य ऐसे अधिकार पर अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित प्रयोजनों के सिवाय निर्बंधन अधिरोपित नहीं कर सकता ।

कर्नाटक राज्य और एक अन्य बनाम **एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ (गवर्नमेंट रिकग्नाइज़ड-अनएडेड-इंग्लिश मीडियम) प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स और अन्य** 387

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 19(1)(छ) और 226 – शिक्षा – प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय – शिक्षा का माध्यम – प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय को शिक्षा के माध्यम का चयन करने का अधिकार प्राप्त है और राज्य अपनी विनियमनकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए भी उसे किसी विशिष्ट भाषा में शिक्षा देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है ।

कर्नाटक राज्य और एक अन्य बनाम **एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ (गवर्नमेंट रिकग्नाइज़ड-अनएडेड-इंग्लिश मीडियम) प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स और अन्य** 387

– अनुच्छेद 226 और 19(1)(छ) – शिक्षा – सभी विद्यालयों के लिए चाहे वे सरकार द्वारा स्थापित या सहायताप्राप्त हैं अथवा गैर-सहायताप्राप्त हैं, मान्यता की आवश्यकता होती है और विद्यालय स्थापित करने के अधिकार को मान्यता की ईप्सा करने के अधिकार से भ्रमित नहीं किया जाना है ।

कर्नाटक राज्य और एक अन्य बनाम **एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ (गवर्नमेंट रिकग्नाइज़ड-अनएडेड-इंग्लिश मीडियम) प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स और अन्य** 387

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100, 101 और 103 – द्वितीय अपील – उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील ग्रहण करते समय विधि का सारवान् प्रश्न न बनाया जाना – द्वितीय अपील न्यायालय को विधि का सारवान् प्रश्न बनाए बिना द्वितीय अपील को ग्रहण या विनिश्चय करने की कोई अधिकारिता नहीं है, इसलिए उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट निर्णय और डिक्री को अपास्त

पृष्ठ संख्या

करके गंभीर गलती की है जिसे अपास्त करना उचित होगा ।

बलविंदर सिंह बनाम **नेशनल फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड और अन्य** 456

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2014] 3 उम. नि. प.

जुलाई-सितम्बर, 2014

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	नंदलाल वासुदेव बदवेक **बनाम** लता नंदलाल बदवेक और एक अन्य (6 जनवरी, 2014)	[2014] 3	1	2014	932	(2014) 2	576
2.	दोन्तुला रवीन्द्रनाथ **उर्फ** रवीन्दर राव **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य (6 जनवरी, 2014)		17		1060	3	196
3.	परमिन्दर **उर्फ** लाडका पोला **बनाम** दिल्ली राज्य (16 जनवरी, 2014)		23		1035	2	592
4.	हिमाचल प्रदेश राज्य **बनाम** सुनील कुमार (5 मार्च, 2014)		37		2564	4	780
5.	हर्षद गोवर्धन सोंदागर **बनाम** इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य (3 अप्रैल, 2014)		47		–	6	1

1	2	3		4		5	
6.	मुरलीधर **उर्फ** गिड्डा और एक अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य (9 अप्रैल, 2014)	[2014] 3	103	2014	2200	(2014) 5	730
7.	कृष्णन **बनाम** हरियाणा राज्य (16 मई, 2014)		116		–		–
8.	ललित कुमार यादव **उर्फ** कुरी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (25 अप्रैल, 2014)		125		–	11	129
9.	स्टेनज़ेन टोयोटेट्सु इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) **बनाम** गिरीश वी. और अन्य (21 जनवरी, 2014)		155		–	3	636
10.	चेन्नई मैट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड और अन्य **बनाम** टी. टी. मुरली बाबू (10 फरवरी, 2014)		170		1141	4	108
11.	फसीला एम. **बनाम** मुन्नेरुल इस्लाम मदरसा समिति और एक अन्य (31 मार्च, 2014)		194		2064		–
12.	धरम देव यादव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (11 अप्रैल, 2014)		206		–	5	509
13.	ऐलायस वुबेन और एक अन्य **बनाम** योगेश मेहरा और अन्य (2 जून, 2014)		231		2210		–
14.	खीम सिंह **बनाम** उत्तराखंड राज्य (8 जुलाई, 2014)		284		2810		–

1	2	3			4		5	
15.	इंदू एयरवेज प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और अन्य **बनाम** मैसर्स मगनम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य (7 अगस्त, 2014)	[2014] 3	300	2014	–	(2014)		–
16.	गुजरात राज्य **बनाम** किशनभाई (7 जनवरी, 2014)		313		–		5	108
17.	विनोद कुमार **बनाम** केरल राज्य (4 अप्रैल, 2014)		358		–		5	678
18.	राजस्थान राज्य **बनाम** मनोज कुमार (11 अप्रैल, 2014)		374		–		5	744
19.	कर्नाटक राज्य और एक अन्य **बनाम** एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ (गवर्नमेंट रिकग्नाइज़ड-अनएडेड-इंग्लिश मीडियम) प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स और अन्य (6 मई, 2014)		387		2094			–
20.	चेरूकुरी मणि पत्नी नरेन्द्र चौधरी **बनाम** मुख्य सचिव, आन्ध्र प्रदेश सरकार और अन्य (8 मई, 2014)		434		2090			–
21.	देविन्दर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (2 जुलाई, 2014)		445		2918			–
22.	बलविंदर सिंह **बनाम** नेशनल फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड और अन्य (7 जुलाई, 2014)		456		–			–

[2014] 3 उम. नि. प. 313

गुजरात राज्य

बनाम

किशनभाई

7 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति चंद्रमौली कुमार प्रसाद और न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 363, 369, 376, 394, 302 और 201 [सपठित मुम्बई पुलिस अधिनियम, 1951 – धारा 135(1)] – छह वर्ष की बालिका का अपहरण – अभियुक्त द्वारा उससे बलात्संग करने के पश्चात् हत्या करना – बालिका की ऐड़ी के ऊपर से पैर काटते हुए उसके कड़ों को चुराना – अभियुक्त बालिका के साथ अंतिम बार देखा गया – सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्त को मृत्यु दंड देना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना तथा राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करना – युक्तियुक्त संदेह से परे मामला साबित न होने पर उच्च न्यायालय का दोषमुक्ति का निर्णय मान्य ठहराते हुए राज्य की अपील खारिज की गई ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376, 363, 369, 394, 302 और 201 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 155, 156 और 157] – छह वर्ष की बालिका की बलात्संग करने के पश्चात् हत्या किया जाना – अभियोजन अधिकारियों की चूक और अन्वेषण में कमियों के कारण अभियुक्त को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया जाना उच्चतम न्यायालय द्वारा सभी राज्यों के गृह सचिवों की उनके राज्यों में अन्वेषण में त्रुटियां और लापरवाही करने वाले अन्वेषण और अभियोजन अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने का निदेश दिया गया कि छह माह के भीतर ऐसी प्रक्रिया को अपनाया जाए जो गंभीर मामलों में पूर्णतया प्रशिक्षित अन्वेषण अधिकारियों द्वारा ही अन्वेषण और अभियोजन किए जाने को सुनिश्चित करे ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – प्रथम

इत्तिला सूचना दर्ज कराए जाने में 7 घंटों का अव्यक्त विलंब – अस्पष्ट अभियोजन पक्षकथन को संदिग्ध बनाता है – जिसके आधार पर दोषसिद्धि को उलटते हुए दोषमुक्ति की गई ।

प्रस्तुत मामले में अभियुक्त अपीलार्थी को एक छह वर्ष की अल्पायु बालिका के साथ बलात्संग और तत्पश्चात् उसकी हत्या करने के लिए निचले न्यायालय द्वारा दंडादिष्ट करते हुए मृत्यु दंडादेश दिया गया था । अपील में उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को अपास्त किया गया था । गुजरात राज्य ने इससे व्यथित होकर विशेष अनुमति याचिका फाइल करते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की । राज्य द्वारा फाइल की गई अपील खारिज करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति का निर्णय मान्य ठहराया गया । अभियोजन पक्ष ने 14 साक्षियों की परीक्षा की । तत्पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त किशनभाई का कथन अभिलिखित किया गया । अपने उपर्युक्त कथन में अभियुक्त किशनभाई ने अपने अन्तर्वलित होने का खंडन किया । यद्यपि किशनभाई को एक अवसर प्रदान किया गया था, उसने अपनी प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था । अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने तारीख 18 अगस्त, 2004 के अपने निर्णय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे सफलतापूर्वक साबित किया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 18 अगस्त, 2004 के एक पृथक् आदेश द्वारा अभियुक्त किशनभाई को फांसी की सजा से दंडादिष्ट किया और यह दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366 के अधीन गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा पुष्टि किए जाने के अध्यधीन था । उपर्युक्त तथ्यात्मक स्थिति में, सेशन न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाही गुजरात राज्य की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की पुष्टीकरण मामला सं. 7 के रूप में प्रस्तुत की गई थी । पुष्टीकरण कार्यवाहियों से अलग, अभियुक्त किशनभाई ने 2003 की सेशन मामला सं. 346 में तारीख 18 अगस्त, 2004 के निर्णय और दंडादेश के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की दांडिक अपील सं. 1549 फाइल की । मामले का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले के प्रस्तुत किए जाने में सम्मिलित अन्वेषक अधिकारी और लोक अभियोजक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में अत्यंत ही विफल रहे हैं । वे न्याय के उद्देश्य को पूरा करने में विफल रहे हैं । आहत गोमी के परिवार के दुख का समाधान नहीं हुआ और उन्हें कोई

न्याय नहीं मिला । आहत के साथ किए गए अत्यंत ही जघन्य और घोरतापूर्ण व्यवहार के अपराधकर्ता अदंडित ही रहे हैं । एक हृदयहीन और क्रूर अपराधी जिसने एक अत्यंत ही जघन्य अपराध कारित किया है वह स्वयं छूट गया है । वह अहमदाबाद या भारत के किसी अन्य शहर/कस्बे में अपना सिर ऊंचा करके घूम रहा होगा । अपराधी घूम रहा है । निर्भय और बिना किसी डर के । अब भी बिना किसी डर के है, क्योंकि उसे वह दंड नहीं दिया गया जोकि उसे दिया जाना चाहिए था, और उसके द्वारा कारित किए गए जघन्य अपराध से अप्रभावित होते हुए उसे कुछ डर भी नहीं है । अब उसके कृत्यों पर कोई अड़चन या बाधा नहीं है । उससे एक अच्छे चित्त के व्यक्ति के समान व्यवहार न करके गलत कार्यों को करने की प्रत्याशा की जा सकती है । अब जैसे ही न्यायालय इस वर्तमान दांडिक अपील का विनिश्चय करने के अपने दायित्व का निर्वहन करने को अग्रसर होता है, न्यायालय विधि के सिद्धांतों को लागू करने के लिए अग्रसर होता है और तद्नुसार निष्कर्ष निकालेंगे । क्योंकि यह न्यायालय का कार्य है । न्यायालय प्रशिक्षित है, और दया या सहानुभूति से प्रभावित नहीं हो सकते । न्यायालय बिना पक्षपात के और परिणामों का विचार किए बिना निर्णय देने के लिए प्रशिक्षित हैं । न्यायालय से भलीभांति तय की गई कसौटियों के आधार पर निर्णय करने की अपेक्षा की जाती है । न्यायालय ने वह सब किया है । इसके बावजूद न्यायालय दुखी है और न्यायालय का हृदय वेदना से पूर्ण है और अत्यंत ही आहत है । न्यायालय एक निर्दोष बालिका के प्रति न्याय देने के कार्य को पूरा नहीं कर सकें । न्यायालय उसके परिवार के प्रति भी न्याय देने के कार्य को पूरा नहीं कर सका । गोमी के परिवार के उद्देश्य अपनी बालिका की एक ऐसे जघन्य अपराधी से पर्याप्त रूप से संरक्षा करने के लिए अपने को दोष देने से कभी नहीं रोक सकते जैसे अपराधी ने उनकी सजगता में चूक के कारण उसके साथ जघन्यता से व्यवहार करते हुए उसके जीवन को भी छीन लिया । यदि हेतुक के संबंध में अभियोजन पक्षकथन सही है, तब अपराध मात्र एक हजार रुपए की रकम के लिए कारित किया गया था । हर बार जब कोई दोषमुक्ति की जाती है तब परिणाम ठीक ऐसे ही होते हैं जैसे कि इसमें यहां इसके ऊपर अवेक्षा की गई है । न्याय का प्रयोजन प्राप्त नहीं हुआ । मामले के एक अन्य पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए । अभियुक्त प्रत्यर्थी को संदेह का लाभ देते हुए उच्च न्यायालय के आदेश को मान्य ठहराते हुए निर्दोष घोषित किया गया है । वह हो सकता है कि बिल्कुल निर्दोष हो या वह अन्वेषक/अभियोजन दलों द्वारा कारित की गई चूकों के कारण सफल हुआ हो । यदि वह दोषी होने के बावजूद बच निकलता है, तब अन्वेषक और

अभियोजन अभिकरणों द्वारा यह सब गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण किया गया समझा जाएगा और यदि अभियुक्त को गलत तौर पर अभियोजित किया गया था तब उसकी पीड़ा भी अत्यंत रही होगी । इस प्रक्रम पर भी अन्वेषक और अभियोजन अभिकरणों को दोष दिया जा सकता है । इसलिए यह आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा प्रथमतया मामले के विचारण के दौरान और इसके पश्चात् अपीली प्रक्रमों पर भोगी गई कठिनाई को भी अनदेखा न किया जाए । कोई निर्दोष व्यक्ति को एक लंबी मुकदमेबाजी जो एक दशक तक चली के दौरान पीड़ा उठाने के लिए दायी नहीं होता । अभियुक्त द्वारा अपनी प्रतिरक्षा में किए गए खर्चों से उसके संपूर्ण वित्तीय स्रोत पूर्वजों या व्यक्तिगत रूप से अर्जित की गई हो, भी समाप्त हो सकते हैं । दांडिक मुकदमेबाजी में भी साधारणतया आर्थिक ऋण लिए जाने सम्मिलित होते हैं । कोई भी अभियुक्त वित्तीय ऋण के अधीन ही रहा होगा जब तक कि उसका मामला निपट नहीं जाता । (पैरा 15, 16 और 17)

इस न्यायालय के समक्ष गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्तियों की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत की प्रार्थना करते हुए या पहले से निरोधाधीन व्यक्तियों की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 के अधीन जमानत के लिए आवेदन करते हुए अनेक याचिकाएं फाइल की गई हैं । ऐसी अनेक याचिकाओं में मुख्य दलील मिथ्या से फंसाए जाने का होता है । इसी भांति अनेक याचिकाएं दिन प्रतिदिन दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अनेक याचिकाएं फाइल की जाती हैं जिनमें भी मुख्य दलील कपट से आलिप्त किए जाने/या फंसाए जाने की होती है । ऐसे मामलों में जहां अग्रिम जमानत या जमानत के लिए धाराओं 438 और 439 के अधीन की गई प्रार्थनाएं नामंजूर की गई हैं या जहां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई याचिका नामंजूर की जाती है, वहां संबंधित व्यक्ति को विभिन्न समयावधियों के लिए कारावास भोगना होता है । वे अपने विचारण के पूरा होने तक अधिकतर समय निरुद्ध और बंदी ही रहते हैं (कम से कम वहां जहां वे गंभीर अपराधों के अभियुक्त हैं) । उनकी दोषसिद्धि के मामले में वे अपीली प्रकरणों के दौरान भी सतत रूप से निरुद्ध रहेंगे और ऐसे मामलों में जिनमें उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलें की गई हैं वहां इस न्यायालय द्वारा उनकी अपीलों का निपटारा किए जाने तक निरुद्ध रहेंगे । जिस समय वे अपीली प्रकरण पर दोषमुक्त किए जाते हैं, तब तक वे अभिरक्षा में अनेकों वर्ष तक

का कारावास भोग चुके होते हैं । जब इस न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाते हैं, तब तक वे 10 वर्ष या उससे अधिक का कारावास भोग चुके होते हैं । जब उन्हें विचारण न्यायालय या अपीली न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया जाता है तब उनसे जो कुछ गलत तौर पर ले लिया गया था वह उन्हें वापस नहीं किया जा सकता । न्याय देने के लिए जिम्मेदार प्रणाली उनकी निरुद्ध की अवधि के बराबर उनके जीवन के वर्षों से वंचित करने के लिए जिम्मेदार होती है । यह असत्य नहीं है कि सभी गलत कारणों से निर्दोष व्यक्तियों को दांडिक अभियोजन की घोरता को भोगना होता है और इसके साथ ही लज्जा और अपमान को भोगना होता है । जैसे कि यह न्यायालय का आबद्ध कर्तव्य है कि सभी पीड़ित को न्याय प्रदान करे, इस पर यदि न्यायालय का यह सुनिश्चित करने का भी आबद्ध कर्तव्य है कि कोई निर्दोष व्यक्ति को दांडिक अभियोजन की कठोरता के अध्यधीन न किया जाए । ऊपर निर्दिष्ट की गई स्थिति में सुधार किए जाने की आवश्यकता है । उक्त प्रयोजन के लिए एक उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु एक सरल प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है । तद्नुसार यह निदेश दिया जाता है कि किसी दांडिक मामले में अन्वेषण के पूरा होने पर, अभियोजन अभिकरण को अपने चित्त का प्रयोग करना चाहिए और सभी शैथिल्यताओं को दूर करने की आवश्यकता है यदि आगे, अन्वेषण की अपेक्षा करते हुए यह आवश्यक हो । यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अन्वेषण के दौरान एकत्रित किए गए साक्ष्य का पूरी सत्यता और विश्वासपूर्वक यह संतुष्टि करते हुए उपयोग किया जाए कि सभी सुसंगत साक्षी और सामग्रियां जोकि आरोपों को साबित करने के लिए है को, किसी मामले के विचारण के दौरान भानतापूर्वक प्रस्तुत किया जाए । यह दो प्रयोजन पूरे करेगा । केवल ऐसे व्यक्ति जिनके विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य है उन्हें ही दांडिक अभियोजन की कठोरता को भोगना होगा । उपरोक्त प्रक्रिया का अनुसरण करने के द्वारा अधिकतर दांडिक अभियोजनों में, संबंधित अभिकरण अभियुक्त की दोषिता को सफलतार्पूक साबित करने में समर्थ होंगे । प्रत्येक दोषमुक्ति को न्याय का हित पूरा करने में न्याय प्रदान करने की प्रणाली की विफलता के रूप में समझा जाना चाहिए । इसी भांति प्रत्येक दोषमुक्ति से साधारणतया यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि किसी निर्दोष व्यक्ति का गलत तौर पर अभियोजन किया गया था । इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य प्रक्रियात्मक तंत्र का सुचारु रूप से पालन करे जो यह सुनिश्चित करेगा कि न्याय का उद्देश्य पूरा हुआ है जो समसामयिक रूप से निर्दोष व्यक्तियों के हितों का रक्षोपाय सुनिश्चित करेगा । उपर्युक्त प्रयोजन को अग्रसर करने के लिए प्रत्येक राज्य के गृह विभाग को यह निदेश देना आवश्यक

समझा गया है कि वे दोषमुक्ति के सभी आदेशों की जांच करें और प्रत्येक अभियोजन मामले की विफलता के कारणों को भी अभिलिखित करें । पुलिस और अभियोजन विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों की एक स्थायी समिति को उपर्युक्त दायित्व निहित किया जाना चाहिए । उपर्युक्त समिति के द्वारा किया गया विचार अन्वेषण और/या अभियोजन या दोनों के दौरान कारित की गई त्रुटियों को दूर करने के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए । प्रत्येक राज्य सरकार का गृह विभाग उपर्युक्त विचारणा से निकाले गए पाठ्यक्रम विषय-वस्तु को कनिष्ठ अन्वेषण/अभियोजन अधिकारियों के लिए अपने विद्यमान प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में इसे सम्मिलित करेगा । इसमें वरिष्ठ अन्वेषण/अभियोजन अधिकारियों के लिए रिफ्रेशर्स प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पाठ्यक्रमों की विषय-वस्तु भी गठित करेगा । अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को तैयार करने के लिए उपर्युक्त दायित्व ऊपर निर्दिष्ट किए गए वरिष्ठ अधिकारियों को किसी समिति में निहित किया जाना चाहिए । वर्तमान जैसे निर्णयों में (मामले के अन्वेषण/अभियोजन में 10 प्रमुख लोपों से अधिक को दर्शाते) और इसी प्रकार के अन्य निर्णयों में उल्लिखित किए गए प्रमुख चूकों को भी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जोड़ा जाना चाहिए । पाठ्यक्रम विषय-वस्तु का वार्षिक तौर पर उपर्युक्त समिति द्वारा उन्हें प्राप्त ताजा जानकारियों के आधार पर पुनर्विलोकन किया जाएगा जिसमें नीचे उद्‌भूत हुए अन्वेषण के वैज्ञानिक तरीकों, न्यायालयों के निर्णयों और विफल हुए अभियोजन मामलों में असफलताओं की जांच करते समय स्थायी समिति द्वारा किए गए अनुभवों के आधार पर भी पाठ्यक्रम का पुनर्विलोकन किया जाएगा । हम इसके अतिरिक्त निदेश देते हैं कि उपर्युक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम छह माह के भीतर किए जाएं । यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे व्यक्ति जो अन्वेषण/अभियोजन से संबंधित संवेदनशील विषयों पर चर्चा कर रहे हैं वे पूर्णतया उनका निपटारा करने के लिए प्रशिक्षित हों । इसके पश्चात् यदि उनके द्वारा कोई चूक कारित की जाती है, तब वे किसी अनभिज्ञता का बहाना नहीं ले सकते, जब वे अपनी चूकों के लिए विभागीय कार्रवाई भोगने के लिए दायी बनाए जाएंगे । (पैरा 18, 19 और 20)

किसी दांडिक मामले में दोषमुक्ति किए जाने पर, ऐसी दोषमुक्ति के लिए जिम्मेदार संबंधित अन्वेषण/अभियोजन अधिकारी या अधिकारियों की आवश्यक रूप से शनाख्त की जानी चाहिए । प्रत्येक मामले में आवश्यक रूप से एक निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना चाहिए कि क्या चूक अनभिज्ञता के कारण थी या उसके लिए दोष दिया जा सकता है । त्रुटि करने वाले

प्रत्येक अधिकारी को यथोचित विभागीय कार्रवाई द्वारा जब कभी ऐसी आवश्यकता हो उसकी चूक के परिणामों को भोगना होगा । विषय की गंभीरता पर विचार करते हुए संबंधित अधिकारी को विशुद्ध रूप से उसी दोषिता के आधार पर स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से अन्वेषण दायित्वों से हटा लिया जाना होगा । हम कुछ अपरिहार्य अध्युपायों के अपनाए जाने की अपेक्षा को भी आवश्यक रूप से महसूस करते हैं जो दांडिक मुकदमेबाजी के दोनों पक्षकारों द्वारा गलत तौर पर भोगी जाती है और ऐसे अपरिहार्य अध्युपायों से उनमें कमी आ सके । तद्नुसार हम यह निदेश देते हैं कि प्रत्येक राज्य सरकार का गृह विभाग सभी त्रुटि करने वाले अन्वेषण/अभियोजन अधिकारी या अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए एक प्रक्रिया बनाए । शनाख्त किए गए ऐसे सभी त्रुटि करने वाले अधिकारी/अधिकारियों जोकि अपनी अपेक्षा या उद्देश्यपूर्ण चूकों के कारण किसी अभियोजन मामले की विफलता के लिए जिम्मेदार हैं, को विभागीय कार्रवाई को भोगना होगा । उपर्युक्त बनाया गया तंत्र अन्वेषक और अभियोजन कर्तव्यों के पालन में गंभीरता के तत्व को डालेगा, और यह सुनिश्चित करेगा कि अन्वेषण और अभियोजन प्रयोजनपूर्ण और निश्चायक हो । वर्तमान निदेश को छह माह के भीतर प्रभावी किया जाना चाहिए । इस न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा वर्तमान निर्णय की एक प्रति एक सप्ताह के भीतर सभी राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्रों के गृह सचिवों को भेजी जानी चाहिए । सभी संबंधित गृह सचिव ऊपर अभिलिखित किए गए निदेशों के पालन को सुनिश्चित करेंगे । उपर्युक्त निदेश के अनुपालन में किए गए कार्यों का अभिलेख भी बनाया जाएगा । न्यायालय को आशा और विश्वास है कि गुजरात राज्य का गृह विभाग वर्तमान मामले में त्रुटि करने वाले अधिकारियों की शनाख्त करेगा और उनके विरुद्ध यथोचित विभागीय कार्रवाई करेगा जोकि विधि के अनुसार यथोचित विचार की जाए । (पैरा 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 37 : **राजेन्द्र प्रहलादराव वासनिक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	13
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 56 : **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	13
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 374 : **शंभू दास** बनाम **असम राज्य** ;	13

[2010] (2010) 2 एस. सी. सी. 583 :
अफताब अहमद अंसारी बनाम **उत्तरांचल राज्य** ; 13

[2007] (2007) 11 एस. सी. सी. 467 :
बिष्णु प्रसाद सिन्हा बनाम **असम राज्य** ; 13

[2005] (2005) 5 एस. सी. सी. 197 :
जोसेफ बनाम **केरल राज्य** ; 13

[2005] (2005) 3 एस. सी. सी. 114 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **सतीश** ; 13

[2003] (2003) 2 एस. सी. सी. 578 :
अमर सिंह बनाम **बलविन्दर सिंह** ; 13

[2001] (2001) 6 एस. सी. सी. 145 :
टखाजी हीराजी बनाम **थाकोरे कुबेरसिंह कमानसिंह और अन्य** ; 13

[2001] (2001) 1 एस. सी. सी. 652 :
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार बनाम **सुनील** ; 13

[2000] (2000) 1 एस. सी. सी. 471 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम **सुरेश** ; 13

[1994] (1994) 3 एस. सी. सी. 381 :
लक्ष्मण नायक बनाम **उड़ीसा राज्य** ; 13

[1974] [1974] 1 एस. सी. आर. 650 :
राम प्रसाद और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** । 13

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 1485.

गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा 2004 की दांडिक अपील सं. 1549 के साथ 2004 के दांडिक पुष्टीकरण मामला सं. 7 में तारीख 30 अगस्त, 2005 को दिए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री विभा दत्त (वरिष्ठ अधिवक्ता), सुश्री आर्ची अग्निहोत्री और हेमंतिका वाही

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ऋषि मल्होत्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर ने दिया ।

न्या. खेहर – नवरंगपुरा पुलिस थाना, अहमदाबाद पर एक परिवाद यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराया गया था कि केशाभाई मथाभाई सोलंकी और लालीबेन की पुत्री गोमी जो छह वर्ष की आयु की बालिका थी का वेलाभाई वनाभाई मारवाड़ी के पुत्र अभियुक्त किशनभाई द्वारा तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न लगभग 6.00 बजे अपहरण/व्यपहरण किया गया था । यह अभिकथन किया गया था कि अभियुक्त ने गोमी को "गोला" (बर्फ की मीठी आईसक्रीम) का लालच दिया था और उसे जीवी के खेत में ले गया और वहां उसके साथ बलात्संग किया था । उसने आहत के सिर और उसके शरीर के अन्य भागों पर ईंटों से क्षतियां पहुंचाकर उसकी हत्या कर दी थी । आहत द्वारा पहने गए "झंजरीस" (एड़ी के ऊपर पहने हुए कड़े) चुराने के लिए उसने उसकी एड़ी के ठीक ऊपर से उसके पैर काट दिए थे । उपर्युक्त परिवाद अभियुक्त किशनभाई के बताए जाने पर जीवी के खेत से मृतका गोमी का शव पाए जाने के पश्चात् दर्ज कराया गया था । उपर्युक्त परिवाद के आधार पर नवरंगपुरा पुलिस थाना, अहमदाबाद में प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज की गई थी ।

2. अभियोजन पक्षकथन, जो अन्वेषण के पूरा होने के पश्चात्, स्पष्ट हुआ यह प्रकट करता है कि मृतका गोमी का परिवार अभियुक्त किशनभाई के परिवार का दूर का संबंधी था । इस संबंध में यह उल्लेख करना भी उपयुक्त होगा कि बाघाभाई नारनभाई सोलंकी अहमदाबाद के नवरंगपुरा क्षेत्र में गुलबाई टेकरा का निवासी था । वह वहां पर अपने परिवार के साथ रहता था । अपने जीविकोपार्जन के लिए बाघाभाई नारनभाई सोलंकी महाकाली पान सेन्टर के नाम से एक दुकान चला रहा था । उक्त दुकान उसके निवास-स्थान के निकट थी । बाघाभाई नारनभाई सोलंकी अपनी दुकान में पान और बीड़ी बेचने का कारोबार चला रहा था । नारनभाई मनाभाई सोलंकी जो बाघाभाई नारनभाई सोलंकी का पिता था वह अहमदाबाद में अम्बावाडी स्थित चपरासी के क्वार्टर में रहता था । मोदाभाई मनाभाई सोलंकी जो बाघाभाई नारनभाई सोलंकी का चाचा था उसकी मृत्यु हो चुकी थी । उसके पुत्र देवाभाई की पुत्री लालीबेन का विवाह केशाभाई मथाभाई सोलंकी से हुआ था । केशाभाई मथाभाई सोलंकी और लालीबेन अहमदाबाद में शबामुखीवास, गुलबाई टेकरा में रह रहे थे । केशाभाई मथाभाई सोलंकी और लालीबेन के दो बच्चे थे, छह वर्ष की आयु की पुत्री गोमी और तीन वर्ष की आयु का पुत्र हिमत । लालीबेन की

जेठानी फूलीबेन वलाभाई, केशाभाई माथाभाई सोलंकी और लालीबेन के निवास-स्थान के निकट रह रहे थे । अभियुक्त किशनभाई फूलीबेन का भाई है और उसके साथ रह रहा था । इसलिए मृतका और इसी भांति अभियुक्त के परिवार एक-दूसरे के दूर के संबंधी होने के कारण भी एक-दूसरे से परिचित थे क्योंकि वह एक-दूसरे के निकट रह रहे थे ।

3. जहां तक घटना का संबंध है अभियोजन पक्ष के अनुसार तारीख 27 फरवरी, 2003 को लालीबेन जो बाघाभाई की भतीजी थी अपने घर में ही थी क्योंकि उसको बच्चा होने वाला था । अपराह्न लगभग 6.00 बजे उसकी पुत्री गोमी जो उस समय छह वर्ष की आयु की थी, अपने घर से बाहर घूमने निकली थी । अभियुक्त किशनभाई जिसकी उस समय आयु 19 वर्ष थी ने उसे "गोला" देते हुए विलुब्ध (लालच) दिया । उसे इस प्रकार गोला का लालच देते हुए वह गोमी को जीवी के खेत में ले गया । जीवी के खेत को जाने वाले रास्ते में, उसने दिनेशभाई करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6, "दाबेली" (मसालेदार आलू भरे हुए ब्रेड/बन) विक्रेता का 8 इंच का ब्लेड वाला एक चाकू चुराया था । अभियुक्त ने गोमी को जीवी के खेत में ले जाकर उसके साथ बलात्संग किया । इसके पश्चात् उसने उसके सिर और शरीर के अन्य भागों पर ईंटों से क्षतियां पहुंचाते हुए उसकी हत्या कर दी थी । आहत द्वारा पहने हुए "झंजरीस" को लेने के लिए उसने अपने द्वारा चुराए गए चाकू से आहत की एड़ियों के ठीक ऊपर से उसकी टांगों को काट दिया था । इसके पश्चात् उसने उसके शरीर को अपनी कमीज से ढक दिया और जीवी के खेत से चला गया । अभियुक्त किशनभाई ने तब अपने द्वारा चुराए गए कड़ों को, प्रेमचंद शंकरलाल की दुकान महावीर ज्वैलर्स पर ले गया । उसने उपर्युक्त दुकान पर कड़ों को 1,000/- रुपए की राशि के लिए गिरवी रख दिया । बाघाभाई और अन्य व्यक्ति जो खोज कर रहे थे ने जब अभियुक्त किशनभाई वह अपने घर लौट रहा था तब उससे पूछताछ की । किशनभाई ने यह कहने के बावजूद कि वह आहत को नहीं ले गया था, गोमी की तलाश कर रहे व्यक्तियों को बताया कि वह जीवी के खेत में हो सकती है । किशनभाई के सुझाने पर, खोज कर रहे व्यक्ति जीवी के खेत पर गए थे, जहां उन्होंने गोमी के शव को पाया ।

4. पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण से पुष्टि होने पर उपर्युक्त तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर अभियुक्त किशनभाई के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 363, 369, 376, 394, 302 और 201 और मुम्बई पुलिस अधिनियम की धारा 135(1) के अधीन आरोप पत्र

विरचित किया गया था । मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, अहमदाबाद के समक्ष उपर्युक्त आरोप-पत्र फाइल किया गया था । चूंकि अन्तर्वलित अपराध सेशन न्यायालय द्वारा ही विचारण किए जा सकते थे, मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने मामले को सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया । तारीख 8 मार्च, 2004 को सेशन न्यायालय जिसे मामला सुपुर्द किया गया था, ने विचारण के लिए आरोप विरचित किए । चूंकि अभियुक्त किशनभाई ने मामले में अपने अन्तर्वलित होने का खंडन किया इसलिए न्यायालय ने अभियोजन को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुज्ञा दी ।

5. अभियोजन पक्ष ने 14 साक्षियों की परीक्षा की । तत्पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त किशनभाई का कथन अभिलिखित किया गया । अपने उपर्युक्त कथन में अभियुक्त किशन-भाई ने अपने अन्तर्वलित होने का खंडन किया । यद्यपि किशनभाई को एक अवसर प्रदान किया गया था, उसने अपनी प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था । अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने तारीख 18 अगस्त, 2004 के अपने निर्णय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे सफलतापूर्वक साबित किया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 18 अगस्त, 2004 के एक पृथक् आदेश द्वारा अभियुक्त किशनभाई को फांसी की सजा से दंडादिष्ट किया और यह दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366 के अधीन गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा पुष्टि किए जाने के अध्यधीन था ।

6. उपर्युक्त तथ्यात्मक स्थिति में, सेशन न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाही गुजरात राज्य की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की पुष्टीकरण मामला सं. 7 के रूप में प्रस्तुत की गई थी । पुष्टीकरण कार्यवाहियों से अलग, अभियुक्त किशनभाई ने 2003 की सेशन मामला सं. 346 में तारीख 18 अगस्त, 2004 के निर्णय और दंडादेश के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की दांडिक अपील सं. 1549 फाइल की ।

7. अभियुक्त किशनभाई द्वारा फाइल की गई दांडिक अपील उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण की गई थी । किशनभाई को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया गया था । 2004 की पुष्टीकरण मामला सं. 7 को 2004 की दांडिक अपील सं. 1549 को मंजूर करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दोषमुक्ति के निर्णय को देखते हुए नामंजूर किया गया था ।

8. उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश से असंतुष्ट होते हुए, गुजरात राज्य ने 2006 की विशेष अनुमति याचिका (दांडिक) सं. 599 के लिए अर्जी फाइल करते हुए इस न्यायालय के समक्ष आवेदन किया है । तारीख 11 सितम्बर, 2008 को अपील के लिए अनुमति प्रदान की गई थी । तत्पश्चात्, मामला 2008 की दांडिक अपील सं. 1485 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

9. इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अभियुक्त प्रत्यर्थी किशनभाई की दोषिता को साबित करने के लिए यह दर्शाने का प्रयास किया है कि अभियोजन अभियुक्त की दोषिता को स्पष्ट रूप से साबित करते हुए परिस्थितियों की खंडित श्रृंखला को दर्शाने में सफल हुआ था । वस्तुतः, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल का प्रयत्न अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए परिस्थितियों की अखंडित श्रृंखला दर्शाने का था । अन्वेषण और मामले के अभियोजन में त्रुटियों के बावजूद और अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य में उच्च न्यायालय द्वारा उजागर की गई विसंगतियों के आधार पर राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अभियुक्त-प्रत्यर्थी की दोषिता साबित करने में अपना विश्वास दर्शाया । इस संबंध में विभिन्न शीर्षों को अभिलिखित करना आवश्यक है जिनके अधीन अपीलार्थी राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दलीलें प्रस्तुत की गई थीं । इसलिए हम सभी दलीलों को संक्षिप्त में प्रस्तुत करेंगे और ऐसा करते हुए अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई की दोषिता साबित करने के लिए, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा हमारी अवेक्षा में लाए गए साक्ष्य को निर्दिष्ट करेंगे । हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई दलीलों को तद्नुसार निम्न प्रकार अभिलिखित किया गया है :–

(क) अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने अभियुक्त को प्रस्तुत मामले के अपराध से जोड़ने के लिए प्रथमतया और प्रबलता से यह दर्शित करने के लिए अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर गहनतापूर्वक अवलंब लिया कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को अंतिम बार आहत के साथ देखा गया था । उसे आहत गोमी को ले जाते हुए देखा गया था । इसके लिए नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के कथन पर अवलंब लिया गया था जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि उसने मृतका गोमी को अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के साथ तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न लगभग 6.00 बजे देखा था । उसके अभिसाक्ष्य के अनुसार उसने गोमी को अपने घर (साक्षी के घर) के बाहर "गोला" खाते हुए देखा था ।

इसी प्रक्रम पर उसने अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को भी पॉलिटेकनीक की ओर से आते हुए देखा था । अभियोजन साक्षी 5 के अभिसाक्ष्य के अनुसार किशनभाई गोमी से मिला था । तत्पश्चात् अभियोजन साक्षी 5 के कथन के अनुसार अभियुक्त गोमी को पॉलिटेकनीक की ओर से ले गया था । अपने परिसाक्ष्य से नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 ने यह भी कथन किया था कि अपराह्न लगभग 9.00 बजे जब उसने पुनः अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को गुलबाई टेकरा पुलिस चौकी को जाने वाली सड़क से आते हुए देखा था तब उससे उन व्यक्तियों ने गोमी के संबंध में पूछताछ की थी जो कि गोमी की तलाश कर रहे थे । अभियुक्त ने भी नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 और अभियोजन साक्षी 5 के पुत्र यथा बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 द्वारा गोमी के संबंध में पूछा गया था । नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के अनुसार उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर में अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई ने यह बताया था कि वह जीवी के खेत में बैठी हुई हो सकती है । नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के परिसाक्ष्य के अतिरिक्त दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के परिसाक्ष्य के प्रति भी निर्देश किया गया था । अभियोजन साक्षी 6 ने अपने अभिसाक्ष्य के दौरान यह प्राख्यान किया था कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई "दबेली" खरीदने के लिए उसकी "लारी" (रेड़ीवालों द्वारा अपने उत्पाद बेचने के लिए प्रयुक्त ठेला) पर आया था । दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 द्वारा यह उल्लेख किया गया था कि उसने अभियुक्त को, लगभग 7 वर्ष की आयु की एक बालिका जो लाल फ्रॉक पहने हुई थी को उसे ले जाते हुए देखा था । अपने कथन में उसने यह भी पुष्टि की कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई ने उससे एक चाकू के लिए कहा था किन्तु उसने उसे वह देने से मना कर दिया था । इस पर "लारी" से जाते हुए किशनभाई ने उसकी लारी से एक चाकू चुरा लिया था । यह भी उल्लेख किया गया था कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के बताए जाने पर बरामद किया गया चाकू उसके द्वारा उसकी लारी से चुराए गए चाकू के रूप में शनाख्त किया गया था । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार अंतिम बार देखे जाने का उपर्युक्त साक्ष्य बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 के अभिसाक्ष्य के द्वारा सम्यक् रूप से न केवल विचारण न्यायालय के समक्ष उसके अभिसाक्ष्य में संपुष्ट किया गया अपितु उसके द्वारा जीवी के खेत से गोमी के शव की बरामदगी के तुरंत पश्चात् नवरंगपुरा पुलिस थाना, अहमदाबाद के बताए जाने पर उसके द्वारा फाइल किए गए परिवाद में भी स्पष्ट किया

गया है ।

(ख) अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने स्वयं अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के बताए जाने पर अपराध के हथियार अर्थात् रक्त से सने चाकू की बरामदगी पर भी बल दिया । मामले के इस पहलू को साबित करने के लिए विद्वान् काउंसेल ने दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के परिसाक्ष्य पर भी अवलंब लिया जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त तारीख 27 फरवरी, 2003 को सायंकाल एक "दबेली" खरीदने के लिए उसकी लारी पर आया था । जैसी कि पूर्वतर अवेक्षा की जा चुकी है अभियुक्त-प्रत्यर्थी दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के कथन के अनुसार लगभग सात वर्ष की आयु की एक छोटी लड़की को लिए हुए था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने उससे उसके चाकू के लिए कहा था किन्तु उसके इनकार करने पर उसकी लारी से उसे चुरा लिया था । दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 ने चाकू की शनाख्त की जो कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई द्वारा उसकी लारी से चुराया गया था और जिसकी अभियुक्त के बताए जाने पर बरामदगी की गई थी । इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई थी कि अभियुक्त पुलिस को जीवी के खेत में ले गया था जहां से उसने हत्या का हथियार अर्थात् वही चाकू जो उसने दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 की लारी से चुराया था, को बरामद कराया । उपर्युक्त चाकू का आठ इंच का ब्लेड था और इसके साथ ही उसका चार इंच का स्टील का हैंडल था । चाकू की बरामदगी के समय उस पर रक्त के चिन्ह थे । उपर्युक्त चाकू पुलिस द्वारा एक स्वतंत्र साक्षी यथा रमेशभाई लाखाभाई भाटी अभियोजन साक्षी 1 की उपस्थिति में बरामद किया गया था जिसने अपने अभिसाक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि प्रश्नगत चाकू जीवी के खेत से अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के बताए जाने पर कुछ पत्थर के नीचे से बरामद किया गया था ।

(ग) इसके बाद अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील देने के लिए अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए चिकित्सीय साक्ष्य को निर्दिष्ट किया कि गोमी के शरीर पर पहुंचाए गए घाव, हत्या के हथियार अर्थात् चाकू जो कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के बताए जाने पर बरामद किया गया था, से पहुंचाए गए थे । इसके लिए विद्वान् काउंसेल ने डा. सोमिल प्रेमचंदभाई मर्चेंट अभियोजन साक्षी 8 के कथन पर अवलंब लिया जिन्होंने तारीख 28 फरवरी, 2003 को मृतका गोमी के शव की शव-परीक्षा की थी । विद्वान् काउंसेल के अनुसार शव-परीक्षा रिपोर्ट में अनेक छिन्न क्षतियों

के संबंध में उल्लेख किया गया था जो कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई द्वारा चुराए गए चाकू से पहुंचाई जा सकती थी । इस संबंध में डा. सोमिल प्रेमचंदभाई मर्चेंट अभियोजन साक्षी 8 द्वारा साबित किए गए शव-परीक्षा टिप्पणों (प्रदर्श 29) की क्रम सं. 14 के प्रति निर्देश किया गया जो स्पष्ट रूप से यह इंगित करती थी कि आहत को पहुंचाई गई क्षतियां जो क्रम सं. 7 पर निर्दिष्ट की गई हैं, चाकू (मुदम्मल वस्तु सं. 19) द्वारा कारित हो सकती थी अर्थात् वही चाकू जो कि अभियुक्त के बताए जाने पर बरामद किया गया था । मृत्युसमीक्षा पंचनामा (प्रदर्श 14) में भी यह अभिलिखित किया गया था कि आहत गोमी की दोनों टांगें एक तीखे धार वाले हथियार से आहत गोमी के पैर में कड़ों को लेने के उद्देश्य से एड़ियों के ठीक ऊपर से काटी गई थीं । विद्वान् काउंसेल के अनुसार यह दस्तावेज यह भी इंगित करता है कि निर्देशाधीन घटना में चाकू का प्रयोग किया गया था ।

(घ) अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की दलील यह भी थी कि जीवी के खेत से आहत के शव की बरामदगी के समय धारीदार एक कमीज से उसे ढंका हुआ पाया गया था । यह दलील दी गई थी कि उपर्युक्त कमीज अभियुक्त-अपीलार्थी किशनभाई द्वारा पहनी गई कमीज के रूप में शनाख्त की गई थी जब वह तारीख 27 फरवरी, 2003 को आहत गोमी को ले जाते हुए देखा गया था । इस निमित्त अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के परिसाक्ष्य पर अवलंब लिया गया था । उपर्युक्त साक्षियों ने धारियों वाली सफेद कमीज के रूप में कमीज की शनाख्त की थी । नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के परिसाक्ष्य को महत्व देने के लिए विद्वान् काउंसेल ने यह भी उल्लेख किया कि जब अभियुक्त को अपराध के कारित किए जाने के पश्चात् पुलिस थाने की दिशा से आते हुए पाया गया था तब वह एक काले रंग की टी-शर्ट पहने हुए देखा गया था । नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के कथन की दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के कथन से संपुष्टि की ईप्सा की गई थी । अभियुक्त-प्रत्यर्थी के संबंध में यह बताया जाता है कि वह एक "दबेली" खरीदने के लिए दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 की लारी पर गया था और उस प्रक्रम पर, अभियोजन प्रत्यर्थी के संबंध में यह बताया जाता है कि वह सफेद धारी की कमीज और एक हरे रंग की पैंट पहने हुए था । कमीज और पैंट की बरामदगी पर उन्हें क्रमशः मुदम्मल वस्तु सं. 8 और 14 के रूप में चिन्हांकित किया गया था । दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने अभिसाक्ष्य के

क्रम के दौरान कमीज और इसी भांति पैंट की शनाख्त की थी । हरे रंग की पैंट जो अभियुक्त प्रत्यर्थी द्वारा पहनी गई थी उसे भी बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 द्वारा शनाख्त किया गया था । स्वीकृततः बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि एक काले रंग की टी-शर्ट अभियुक्त प्रत्यर्थी द्वारा पहनी गई थी जब उसे पाया गया था और उसे पुलिस थाना लाया गया था । उपर्युक्त वस्तु अनघ लालाभाई मारवाड़ी अभियोजन साक्षी 12 और नारनभाई लालभाई देसाई अभियोजन साक्षी 13 द्वारा शनाख्त की गई थी जो उपर्युक्त वर्णित वस्त्रों के अभिग्रहण के समय पंच साक्षी थे ।

(ङ) अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई थी कि न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट यह पुष्टि करने के लिए पर्याप्त थी कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी वह व्यक्ति था जोकि प्रस्तुत अपराध के कारित किए जाने में अन्तर्वलित था । इस निमित्त यह भी उल्लेख किया गया था कि आहत गोमी को रक्त श्रेणी 'बी पोजिटिव' दर्शाया गया था । न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार घटनास्थल से बरामद की गई ईंटें (जोकि आहत के सिर और शरीर के अन्य अंगों पर क्षतियां कारित करने के लिए प्रयुक्त की गई थीं), मृतका आहत गोमी द्वारा पहनी हुई कच्छी जीवी के खेत से आहत के शव की बरामदगी के समय उसके शव पर ढकी पाई गई सफेद कमीज अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई द्वारा पहने गए टी-शर्ट और हरी पैंट (उस समय जब उसे पाया गया था) और अपराध का हथियार भी, यथा अभियुक्त-प्रत्यर्थी के बताए जाने पर बरामद किया गया चाकू, इन सभी पर रक्त के धब्बे पाए गए थे । न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट यह प्रकट करती है कि उपर्युक्त सभी वस्तुओं पर रक्त के धब्बे रक्त श्रेणी 'बी पोजिटिव' के थे । इसलिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की दलील यह थी कि यह अभियुक्त-प्रत्यर्थी को प्रस्तुत अपराध से बिना किसी त्रुटि के जुड़ा हुआ दर्शाता है ।

(च) अभियुक्त-प्रत्यर्थी के हेतुक को साबित करने के लिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अन्वेषण अधिकारी रणछोड़जी भोजराजजी चौहान अभियोजन साक्षी 14 के कथन पर अवलंब लिया जिन्होंने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया था कि महावीर ज्वैलर्स के मालिक अर्थात् प्रेमचंद शंकरलाल मेहता पुलिस थाने पर स्वयं गए थे । ऊपर वर्णित आभूषण विक्रेता द्वारा पुलिस को यह सूचित किया जाना बताया गया है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई ने उनके पास एक हजार रुपए की राशि के लिए आहत गोमी से संबंधित कड़ों को गिरवी रखा था । जहां तक कड़ों

की शनाख्त का संबंध है केशोभाई मदनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 7 के कथन के प्रति भी निर्देश किया गया था जो आहत का पिता था जिसने अपनी पुत्री गोमी से संबंधित मुदम्मल वस्तु सं. 18 के रूप में चिन्हांकित कड़ों की शनाख्त की थी जोकि वह उस समय पहने हुए थी जब वह लापता हुई थी । जगदीशभाई बाघाभाई मारवाड़ी अभियोजन साक्षी 11 और चांदी के कड़ों की बरामदगी के पंचनामे के प्रति भी निर्देश किया गया था जोकि विद्वान् काउंसेल के अनुसार अभियुक्त को अपराध से जोड़ते हैं ।

(छ) अंत में अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त द्वारा किए गए कथन के प्रति इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया । उसके उपर्युक्त परिसाक्ष्य के दौरान उसका सुसंगत साक्षियों के साक्ष्य से सामना कराया गया था जो यह स्पष्ट करता था कि आहत गोमी को उसके साथ अंतिम बार तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न 6.00 बजे देखा गया था । उसका इस तथ्य से भी सामना कराया गया था कि उसने स्वयं तलाश कर रहे दल को सूचित किया कि गोमी जीवी के खेत में पाई जा सकती है । यह दलील दी गई है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई जिसे मृतका के मिलने के स्थान के संबंध में विशेष जानकारी थी यह स्पष्ट और साबित करने के लिए आबद्ध था कि कब और कैसे वह आहत गोमी के साथ से अलग हुआ था । यह दलील दी गई थी कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने अभिसाक्ष्य के दौरान अभियुक्त कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे सका था ।

उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई थी कि किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी वर्णन के अभाव में भी अभियोजन को पारिस्थितिक साक्ष्य के माध्यम से अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई की दोषिता साबित करने में सफल होना अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ऊपर चर्चा किए गए विभिन्न साक्षियों के साक्ष्य से उद्भूत हुआ पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला से केवल एक निष्कर्ष निकलता है कि केवल अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई ने निर्देशाधीन आपराधिक कृत्यों को कारित किया था । यह भी दलील दी गई थी कि पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला यह साबित करने के लिए पर्याप्त थी कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने ही अभिकथित आपराधिक कृत्य कारित किए थे । यह भी दलील दी गई थी कि पारिस्थितिक श्रृंखला में कोई कड़ी लापता नहीं है जिससे कि मामले में कोई अस्पष्टता (गलत) हो सके ।

10. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों की सुनवाई की है । वर्तमान दांडिक अपील से उद्भूत हुए संविवाद का अवधारण करने के लिए हम पहले विभिन्न शीर्षों के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष का संक्षिप्तीकरण करने का प्रयास करेंगे । हमने विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के विभिन्न पहलुओं की विवक्षाओं को समझने के लिए उपर्युक्त प्रक्रियाओं को अंगीकृत करने का विनिश्चय किया है । हमारे द्वारा यह प्रक्रिया इसलिए अपनाया गया है (यद्यपि यह न तो विचारण न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय द्वारा अंगीकृत की गई थी) जिससे कि प्रभावी ढंग से समझा जा सके और तत्पश्चात् इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों पर यथोचित रूप से चर्चा की जा सके ।

11. हम सर्वप्रथम विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त की दोषिता को साबित करने की प्रक्रिया में अन्वेषक और अभियोजन अभिकरणों द्वारा कारित की गई कमियों पर चर्चा करना चाहेंगे । यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि ये सभी कमियां/त्रुटियां जोकि अन्वेषण और अभियोजन के दौरान कारित की गई थीं आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा उल्लेख की गई थी । यह सुसंगत पहलू गठित करते हैं जोकि अभियोजन द्वारा अवलंब लिए गए साक्ष्य की परीक्षा करते समय विचारों में लिए जाने को दायी है । हमने उपर्युक्त कमियों का संक्षिप्तीकरण राज्य की ओर से दिए गए दलीलों पर सही तौर से चर्चा करने के लिए हमें समर्थ बनाने हेतु किया है । चूंकि वर्तमान मामले में अभियुक्त की दोषिता पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है, हमारे लिए यह अवधारण करना आवश्यक है कि क्या अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से घटनाओं की एक संपूर्ण श्रृंखला स्थापित होती है या नहीं । अभियुक्त की कमियों और त्रुटियों को नीचे यहां निम्न प्रकार संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है :–

(क) अभियोजन पक्षकथन के अनुसार कि गोमी के पैर से कड़े निकालने के पश्चात् अभियुक्त किशनभाई उन कड़ों को प्रेमचंद शंकरलाल के महावीर ज्वैलर्स नामक दुकान पर ले गया था । उसने उपर्युक्त कड़ों को प्रेमचंद शंकरलाल के पास एक हजार रुपए की राशि में गिरवी रखा था । उक्त कड़े प्रेमचंद शंकरलाल और अन्वेषक अधिकारी को तारीख 1 मार्च, 2003 को दो पंच साक्षियों की उपस्थिति में सौंपे गए थे । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार आभूषण विक्रेता स्वयं ही कड़ों के साथ पुलिस थाने गया था जब उसने समाचारपत्रों में यह रिपोर्ट पढ़ी थी कि एक

लड़की के साथ बलात्कार किया गया था और उसकी हत्या की गई थी और उसके कड़े निकाल लिए गए थे । वह इस संदेह के अधीन पुलिस थाने गया था कि उसके पास गिरवी रखे गए कड़े समाचारपत्र रिपोर्टों में उल्लेख की गई लड़की के हो सकते हैं । पंच साक्षी यथा जगदीशभाई मारवाड़ी अभियोजन साक्षी 15 ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि उपर्युक्त प्रेमचंद शंकरलाल ने अभियुक्त किशनभाई की उसी व्यक्ति के रूप में शनाख्त की थी जिसने उसके पास कड़ों को गिरवी रखा था । इस संबंध में यह उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रेमचंद शंकरलाल को अभियोजन साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया था । यह अवेक्षा करना महत्वपूर्ण है कि पुलिस को सौंपे गए कड़े मृतका गोमी द्वारा पहने गए कड़ों के रूप में अभियोजन पक्ष द्वारा सफलतापूर्वक साबित किए गए थे । उच्च न्यायालय के अनुसार प्रेमचंद शंकरलाल को अभियोजन साक्षी के रूप में प्रस्तुत न करने के कारण अभियोजन पक्ष की कमी के परिणामस्वरूप घटनाओं की श्रृंखला में एक कड़ी लापता है जिससे कि अभियुक्त किशनभाई को कड़ों से जोड़ने की कड़ी साबित की जा सकती थी और तद्द्वारा उसे निश्चायक रूप से अपराध से जोड़ा जा सकता था ।

(ख) अभियोजन पक्षकथन इसके अतिरिक्त यह प्रकट करता है कि प्रेमचंद शंकरलाल जोकि महावीर ज्वैलर्स का स्वामी था, ने अभियुक्त किशनभाई को एक पावती दी थी जिसमें एक हजार रुपए की राशि के लिए कड़ों को गिरवी रखा जाना उल्लेख किया गया था । उपर्युक्त पावती विचारण न्यायालय के अभिलेख पर प्रदर्श 52 के रूप में प्रस्तुत की गई थी । प्रेमचंद शंकरलाल के पास उपर्युक्त पावती पर अभियुक्त किशनभाई ने अपने अंगूठा का निशान लगाया था । यद्यपि पावती पर उस व्यक्ति का नाम राजू भाई के नाम से इंगित है जिसने कड़े गिरवी रखे थे, किन्तु यह उस व्यक्ति द्वारा जिसने कड़े गिरवी रखे थे, एक मिथ्या नाम दिया गया स्पष्ट होता है । निश्चित रूप से उक्त पावती पर लगाए गए अंगूठा निशानी के शनाख्त में कोई त्रुटि नहीं हो सकती । अभियोजन अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई की अंगूठा छाप के साथ पावती (प्रदर्श 52) पर अंगूठा छाप से तुलना करने के द्वारा गिरवी रखने वाले व्यक्ति के शनाख्त को आसानी से साबित कर सकता था । तथापि, ऐसा नहीं किया गया था । अभियोजन द्वारा कारित की गई यह त्रुटि जो प्रेमचंद शंकरलाल को साक्षी के रूप में प्रस्तुत न किया जाना था, यह उस व्यक्ति की शनाख्त को साबित करने के द्वारा सही की जा सकती थी जिसने कड़े गिरवी रखे थे और जो विधि के अनुसार पावती (प्रदर्श 52) पर अंगूठा छाप की शनाख्त के द्वारा किया

जा सकता था । यदि अंगूठा छाप अभियुक्त किशनभाई का होना निकलता, तब उसे बिना किसी त्रुटि के अपराध से जोड़ा जा सकता था । यदि यह अभियुक्त किशनभाई की अंगूठा छाप नहीं पाई गई थी तब उसकी निर्दोषिता का निष्कर्ष निकाला जा सकता था । उच्च न्यायालय के अनुसार विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्षकथन साबित करने में हुई इस महत्वपूर्ण कमी के परिणामस्वरूप अभियुक्त की दोषिता/निर्दोषिता को साबित करने में बड़ी बाधा उत्पन्न हुई थी ।

(ग) यह भी अभियोजन पक्षकथन है कि जब अभियुक्त किशनभाई को पाया गया था तब उसके कब्जे से 940/- रुपए की राशि बरामद की गई थी । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार अभियुक्त किशनभाई ने प्रेमचंद शंकरलाल जिसकी महावीर ज्वैलर्स नाम से दुकान थी पर एक हजार रुपए की राशि के लिए कड़ों को गिरवी रखा था । अभियुक्त को निरुद्ध किए जाने के समय उसके कब्जे से बरामद की गई राशि की कड़ी को जोड़ने के लिए अभियोजन पक्ष को यह साबित करना आवश्यक था कि किस प्रकार केवल 940/- रुपए की राशि ही क्यों अभियुक्त किशनभाई के कब्जे से बरामद की गई थी । उसके कब्जे में कम से कम एक हजार रुपए अर्थात् प्रेमचंद शंकरलाल द्वारा उसे दी गई राशि जब उसने उसकी दुकान पर कड़ों को गिरवी रखा था, होनी चाहिए थी । यदि यह मान भी लिया जाए कि उसके पास कोई राशि नहीं थी तब उसने कड़ों को गिरवी रखा था । अभियोजन द्वारा यह महत्वपूर्ण कड़ी साबित न किए जाने पर यह अभियुक्त किशनभाई की दोषिता को साबित करने के लिए आवश्यक घटनाओं की श्रृंखला को तोड़ती है और अभियोजन साक्ष्य में एक गंभीर कमी घटित करती है ।

(घ) अभियोजन पक्षकथन से यह प्रकट है कि आहत गोमी से बलात्संग किया गया था । बलात्संग के तथ्य को साबित करने में अभियोजन पक्ष ने मृतका गोमी की शव-परीक्षा किए जाने के समय तैयार किए गए टिप्पण पर अवलंब लिया था । यह अन्य बातों से अलग प्रकट करता है कि भगोष्ठ पर सूखा हुआ रक्त विद्यमान था और योनि द्वार के बाएं उपांतक पर उत्तकों में गहन विदारण था । योनिच्छद भी तीन और छह बजे घड़ी की सुई के आकार छपा हुआ पाया गया था । इसलिए अभियुक्त को अन्वेषण के दौरान चिकित्सीय परीक्षा के लिए भेजा गया था । उपर्युक्त प्रयोजन के लिए उसकी डा. पी. डी. शाह द्वारा जांच की गई थी । वस्तुतः डा. पी. डी. शाह को विचारण न्यायालय के समक्ष एक साक्षी के रूप में उद्धृत किया गया था । उपर्युक्त के बावजूद डा. पी. डी. शाह अभियोजन

साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं की गई थी । आहत गोमी के साथ बलात्संग को साबित करने के लिए घटनाओं की श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी स्पष्ट रूप से त्रुटि हुई थी क्योंकि डा. पी. डी. शाह को एक अभियोजन साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं की गई थी ।

(ङ) उच्च न्यायालय ने यह भी अवेक्षा की है कि अभियुक्त किशनभाई की चिकित्सीय जांच से संबंधित चिकित्सा अधिकारी द्वारा दी गई रिपोर्ट/प्रमाणपत्र भी विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था । यह स्पष्ट है कि डा. पी. डी. शाह को एक अभियोजन साक्षी के रूप में प्रस्तुत न करने की त्रुटि विचारण न्यायालय के अभिलेख पर विधि के अनुसार उसे साबित किए जाने के पश्चात् रखा जा सकता था यदि उनके द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट अभियुक्त किशनभाई के जांच करने के पश्चात् प्रस्तुत की गई थी और इससे यह कमी दूर हो जाती । विचारण न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त रिपोर्ट प्रस्तुत न करने के अभियोजन पक्ष की कार्रवाई विचारण न्यायालय के समक्ष मामले को साबित करने में एक अन्य गंभीर लोप था । इसके कारण भी घटनाओं की श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी लापता हुई जो यह साबित कर सकती थी कि अभियुक्त किशनभाई ने आहत गोमी से बलात्संग किया था या नहीं ।

(च) उच्च न्यायालय ने छह वर्ष की आयु की बालिका गोमी के गुप्तांग पर पहुंची क्षतियों की अवेक्षा करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि इससे उस व्यक्ति के जननांग (शिश्न) पर भी समान रूप से क्षतियां पहुंची होंगी जिसने उसके साथ बलात्संग किया था । यह उल्लेख किया था कि यदि अभियुक्त किशनभाई को चिकित्सीय जांच के लिए भेजा गया था, तब चिकित्सा अधिकारी का परिसाक्ष्य या रिपोर्ट से कोरोना ग्लेंडिस के चारों ओर स्मेग्मा की विद्यमानता प्रकट होती जो या तो अभियुक्त की निर्दोषिता या दोषिता को साबित करता विशेष रूप से यदि अभियुक्त की 24 घंटे के भीतर ही चिकित्सीय जांच की जाती है । वर्तमान मामले में घटनाओं का क्रम यह प्रकट करता है कि घटना तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न 6.00-8.00 बजे के बीच कारित की गई थी । जीवी के खेत से अपराह्न लगभग 9.00 बजे मृतका गोमी के शव की बरामदगी के समय यह विश्वास किया गया था कि उसके साथ बलात्संग किया गया था । अभियुक्त किशनभाई को पहले तारीख 28 फरवरी, 2003 के पूर्वाह्न 6.40 बजे गिरफ्तार किया गया दिखाया गया था । (यदि उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष भी निकाला कि अभियुक्त किशनभाई अपराह्न 9.00 बजे से ही पुलिस अभिरक्षा में था, इसे अनदेखा भी कर दिया जाए) अभियुक्त की

घटना के 24 घंटे के भीतर ही चिकित्सीय जांच की जा सकती थी । अभियोजन पक्षकथन यह दर्शित नहीं करता कि क्या कार्रवाई की गई या नहीं । मामले के अन्वेषण में इस त्रुटि से घटनाओं की श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी का लोप कारित किया है जिससे अपरिहार्य रूप से यह साबित होता है कि अभियुक्त किशनभाई बलात्संग कारित किए जाने का दोषी था (या संभव रूप से उसकी निर्दोषिता) ।

(छ) यह अवेक्षा किए जाने की आवश्यकता है कि जब अभियुक्त किशनभाई गिरफ्तार किया गया था तब उसके शरीर पर अनेक क्षतियां थीं । उक्त क्षतियों का उसकी गिरफ्तारी पंचनामे में भी उल्लेख किया गया था । तारीख 28 फरवरी, 2003 के पूर्वाह्न 7.15 बजे अभियुक्त किशनभाई ने यह अभिकथन करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई कि उसकी आहत गोमी के कुछ रिश्तेदारों द्वारा और तलाश दल के साथ वाले कुछ अज्ञात व्यक्तियों द्वारा इस संदेह/विश्वास के अधीन पिटाई की गई थी कि वह घटना का जिम्मेदार था । उपर्युक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्त किशनभाई ने उसे पहुंची क्षतियों की प्रकृति भी उल्लेख कीं । अन्वेषक अधिकारी रणछोड़जी भोजराजजी चौहान अभियोजन साक्षी 14 का कथन यह प्रकट करता है कि अभियुक्त किशनभाई का सिविल अस्पताल अहमदाबाद उसकी चिकित्सीय जांच किए जाने के लिए भेजा गया था । चिकित्सक जिसने अभियुक्त की जांच की थी को न तो अभियोजन साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया गया था और न ही उसके मत/निष्कर्ष के विवरण प्रकट करते हुए चिकित्सा अधिकारी द्वारा दी गई रिपोर्ट/प्रमाणपत्र को अभिलेख पर रखा गया था । अभियोजन पक्षकथन की सफलता के लिए यह साक्ष्य महत्वपूर्ण था । उच्च न्यायालय के अनुसार रक्त समूह 'बी पोजिटिव' अभियुक्त किशनभाई के वस्त्रों पर पाया गया था । इसके पश्चात् अवधारण किए जाने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या यह उसका स्वयं का रक्त था या आहत गोमी का रक्त था । चिकित्सा अधिकारी जिसने अभियुक्त किशनभाई की जांच की थी जब उसे सिविल अस्पताल अहमदाबाद चिकित्सीय जांच के लिए भेजा गया था, के कथन से यह प्रकट होता है कि क्या अभियुक्त किशनभाई को कोई रक्तस्राव वाली क्षतियां पहुंची थीं या नहीं । अभियुक्त किशनभाई को पहुंची क्षतियों की प्रकृति का महत्व इस तथ्य से उद्भूत होता है कि अभियुक्त किशनभाई और आहत गोमी दोनों का एक ही रक्त समूह 'बी पोजिटिव' था । केवल एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि उसके वस्त्रों पर रक्त आहत का था । यदि यह साबित किया जाता कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को

कोई रक्तस्राव वाली क्षतियां नहीं पहुंची थीं, और इसलिए उसके वस्त्रों पर उसका स्वयं के रक्त होने की संभावना का निराकरण किया गया था । घटनाओं की श्रृंखला में यह महत्वपूर्ण कड़ी अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से भी लापता है, और यह मामले के अन्वेषण/अभियोजन में एक गंभीर कमी गठित करता है ।

उपर्युक्त तथ्य संबंधी स्थिति को देखते हुए उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "चिकित्सा विज्ञानी के क्षेत्र में प्रगति को देखते हुए अन्वेषक अभिकरण को इस प्रक्रम पर रोकना चाहिए था । यद्यपि रक्त के समूहीकरण का एबीओ प्रणाली अत्यंत ही महत्वपूर्ण प्रणाली है जोकि विभिन्न व्यक्तियों के रक्त को प्रभेदन करने के लिए सामान्यतया प्रयुक्त की जाती है । वर्तमान समय में विज्ञानी में लगभग 19 वंशानुगत रूप से अवधान करने के लिए रक्त समूहीकरण प्रणालियां हैं और यह भी ज्ञात है कि लगभग 200 विभिन्न रक्त समूह होते हैं जोकि आधुनिक विज्ञान रीतियों द्वारा शनाख्त किए जाते हैं । (स्रोत : मैग्रा हिल एंसाइक्लापीडिया का साइंस एंड टेक्नोलॉजी, जिल्द-2) यदि अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसा प्रयास किया गया होता, तब उक्त प्रयास के परिणाम से विचारण न्यायालय को यह अभिनिश्चित करने में अत्यंत सहायता मिलती कि क्या अभियुक्त वस्तुतः अपराधस्थल पर गया था ।" यह भी निर्देशाधीन अपराध के अन्वेषण में एक स्पष्ट कमी है ।

मामले के उक्त पहलू पर वैज्ञानिक अन्वेषण में अब अत्यंत ही उन्नति हुआ है । अन्वेषण अभिकरण को रक्त नमूनों की डीएनए पहचान की ईप्सा करनी चाहिए थी जिससे इस संबंध में स्पष्ट होता कि क्या आहत गोमी का रक्त वस्तुतः अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के वस्त्रों पर था या नहीं । यह वैज्ञानिक अन्वेषण निरापद रूप से यह अवधारित करता कि क्या अभियुक्त-प्रत्यर्थी अपराध से जुड़ा हुआ था या नहीं । इसके अतिरिक्त अपराध के कारित किए जाने में प्रयुक्त चाकू (जो अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई ने अभिकथित रूप से दिनेश करसनभाई थाकोरे अभि. साक्षी 6 से चुराया था) पर पाए गए रक्त की डीएनए पहचान निश्चित रूप से यह अवधारित करती कि क्या उक्त चाकू आहत गोमी की एड़ी के ऊपर के कड़े को लेने के लिए उसके पैरों को काटने के लिए प्रयुक्त किया गया था या नहीं । न्यायालयिक विज्ञानी के क्षेत्र में इतनी उन्नति होने के बावजूद अन्वेषण अभिकरण ने अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई की दोषिता का सही रूप से अवधारण करने के लिए प्रभावी अन्वेषण करने में गंभीर रूप से त्रुटि की थी ।

(ज) बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभि. सा. 2 द्वारा प्रस्तुत किए गए

परिवाद से यह भी स्पष्ट होता है कि उसे कालाभाई गणेशभाई द्वारा सूचित किया गया था कि उसने अभियुक्त किशनभाई को गोमी को ले जाते हुए देखा था । ऐसी दशा में अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा गोमी का अपहरण किए जाने के तथ्य का सबूत केवल कालाभाई गणेशभाई के कथन से साबित हो सकता था जिसने अभिकथित रूप से और वास्तविक रूप से अभियुक्त किशनभाई को गोमी को ले जाते हुए देखा था । उच्च न्यायालय के अनुसार अभियोजन के ज्ञात कारणों से उन्होंने कालाभाई गणेशभाई को एक साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया था । यद्यपि उच्च न्यायालय के अनुसार ऊपर वर्णित कालाभाई गणेशभाई चपरासी के क्वार्टरों में से एक क्वार्टर का निवासी था और एक सरकारी सेवक भी था, उपर्युक्त तथ्यपरक स्थिति के साक्ष्य के अभाव के परिणामस्वरूप अंतिम बार देखे जाने के साक्ष्य को साबित करने के लिए आवश्यक घटनाओं की श्रृंखला से सारभूत महत्व की तथ्यपरक स्थिति की पुष्टि की कमी होती है ।

(झ) यह भी प्रकट है कि आहत के शरीर से रक्त से सना हरे रंग का "दुपट्टा" की बरामदगी के संबंध में कोई विवाद नहीं है । रक्त से सना हरे रंग का "दुपट्टा" चिकित्सा अधिकारी द्वारा उस समय पाया गया था जब वह गोमी की शव-परीक्षा कर रहे थे । हरे रंग के "दुपट्टा" की विद्यमानता भी शव-परीक्षा रिपोर्ट में सम्यक् रूप से उल्लेख की गई थी । उच्च न्यायालय के अनुसार किसी भी अभियोजन साक्षी ने आहत द्वारा पहने हुए हरे रंग के "दुपट्टे" के तथ्य का संदर्भ नहीं लिया था । अभियोजन साक्ष्य के अनुसार मृतका लाल रंग की फ्राक और कच्छी पहने हुए थी जबकि अभियुक्त पूरी बांह की सफेद कमीज और हरे रंग का पैंट पहने हुए था । उच्च न्यायालय के अनुसार यदि न तो आहत और न ही अभियुक्त के पास हरे रंग का "दुपट्टा" था तब प्रश्न यह उठता है कि आहत के शव पर किस प्रकार हरे रंग का रक्त से सना "दुपट्टा" पाया गया था । घटना के समय तीसरे पक्ष की विद्यमानता का निष्कर्ष भी निकलता है । हरे रंग के "दुपट्टे" की विद्यमानता को स्पष्ट न करने में उपर्युक्त लोप पर उच्च न्यायालय ने भी विचार किया और यह अभियुक्त किशनभाई के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के अन्वेषण/अभियोजन की प्रक्रिया में अभियोजन पक्ष के द्वारा एक ज्वलंत लोप है ।

(ञ) विचारण न्यायालय के समक्ष अभिसाक्ष्य देते हुए दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 ने यह पुष्टि की कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई उसकी लारी पर पहली बार तारीख 27 फरवरी, 2003 को एक दबेली खरीदने आया था । इसलिए यह स्पष्ट है कि दिनेश

करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 तारीख 27 फरवरी, 2003 से पहले अभियुक्त-प्रत्यर्थी को नहीं जानता था । इस स्थिति में अन्वेषक अभिकरण को यह आवश्यक था कि वह यह अवधारण करने के लिए एक शनाख्त परेड जांच आयोजित करता कि क्या दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 ने अभियुक्त-प्रत्यर्थी की सही तौर पर उस व्यक्ति के रूप में शनाख्त की थी जो तारीख 27 फरवरी, 2003 को एक दबेली खरीदने के लिए उसके लारी पर आया था । और यह भी क्या वह वही व्यक्ति था जिसने तारीख 27 फरवरी, 2003 को उसकी लारी से एक चाकू चुराया था । यह भी मामले के अन्वेषण/अभियोजन में एक गंभीर कमी है ।

(ट) बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2, वर्तमान मामले में परिवादी ने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान निम्न कथन किया :–

> "यह घटना तारीख 27 फरवरी, 2003 को घटित हुई थी, उस दिन लीलाबेन गर्भावस्था के संबंध में मेरे घर आई थी । घटना के दिन सायंकाल 6.00 बजे मुझे यह मालूम पड़ा कि गोमीबेन जो लीलाबेन की पुत्री थी लापता थी । इसलिए हमारे सभी रिश्तेदारों ने उसकी तलाश करना शुरू किया था । हम मेरे पिता के क्वार्टर पर गए थे और गोमीबेन के संबंध में पूछताछ की थी, मेरे पिता ने बताया कि उन्होंने गोमीबेन को लीला के भाभी के भाई किशन के साथ देखा था और उसने गोमी को आईसक्रीम दी थी । इसलिए हमने क्वार्टर में और अन्य स्थानों पर तलाश की थी । रात्रि में लगभग 8.00 बजे किशन पुलिस थाने से आ रहा था, हमने उससे पूछताछ की थी, और उस समय मेरे साथ श्री जगाभाई मोलाभाई, मोहनभाई मोलाभाई, हीराभाई उपस्थित थे । यह पुलिस चौकी गुलबाई टेकरा पुलिस चौकी के नाम से थी । उसने मुझे बताया कि उसने गोमी को जीवी वाला खेत पर छोड़ा था । इसलिए हम 8 या 9 बजे के लगभग जीवी वाला खेत पर पहुंचे और हमने गोमीबेन को मृत दशा में पाया, उसके सिर पर और शरीर के नीचे भागों पर अनेक क्षतियां थीं । उसके साथ बलात्संग किया गया था ।"

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि गोमी पहली बार अपराह्न 6.00 बजे लापता पाई गई थी । उसकी तत्पश्चात् तुरंत ही तलाश की गई थी । तलाश दल अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई से मिला था जोकि अपराह्न 8.00 बजे पुलिस थाने की ओर से आ रहा था । सभी अभियोजन साक्षी इस तथ्य के प्रति स्पष्ट हैं कि गोमी अपराह्न लगभग 6.00 बजे से लापता थी

अर्थात् यह वह समय था जब उसे अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के साथ अंतिम बार देखा गया था और तत्पश्चात् तलाश दल अपराह्न 8.00 बजे किशनभाई से मिला था । अभियोजन वर्णन को बल देने के लिए यह साबित करना आवश्यक था कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के लिए गोमी को अपराह्न 6.00 बजे ले जाने के पश्चात् यह संभव था कि वह दिनेश करसनसाई थाकोरे की लारी पर रुका था और उससे एक दबेली खरीदी थी । इसके पश्चात् उसने उसका चाकू चुराया था, और तब अभियुक्त-प्रत्यर्थी गोमी के साथ जीवी के खेत की ओर गया था । तत्पश्चात् उसके पास पर्याप्त समय रहा होगा कि वह उसके साथ बलात्संग करता और जब उसने उसके सिर पर ईंटों से हमला किया और शरीर के अन्य अंगों पर हमला किया और उसकी हत्या कर दी और अंततः उसकी टांगों को उसके एड़ी के ऊपर से काट दिया था और उसके कड़ों को ले लिया था । उसने इसके पश्चात् अपराध के कारित किए जाने में उपर्युक्त चाकू को पत्थरों के नीचे छुपा दिया था और तत्पश्चात् उसने कड़ों को ले जाकर महावीर ज्वैलर्स के पास ले गया और जिससे कि वह प्रेमचंद शंकरलाल मेहता के पास उनकी कार्रवाई रोक सके और उसके पास उसकी पावती लेने का भी समय था । कुल मिलाकर उसके पास अपने निवासस्थान जाने का भी समय था जिससे कि वह नई कमीज पहन सके अर्थात् वह वही कमीज पहने हुए था जब उसे गिरफ्तार किया गया था । कुल मिलाकर उसके पास जीवी के खेत से प्रेमचंद शंकरलाल मेहता की दुकान के क्षेत्र तक आने-जाने का समय था और इसके अतिरिक्त उसे उपर्युक्त दुकान से अपने निवासस्थान जाने और अंत में अपने निवासस्थान से उस स्थान पर जाने जहां पर उसे गिरफ्तार किया गया था, पर्याप्त समय था । यह समझना कठिन है कि किस प्रकार से अभियोजन वर्णन में दशाई गई गतिविधियां तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न 6.00 बजे से अपराह्न 8.00 बजे की बीच की जा सकती थीं और उसी दिन दो घंटे की अवधि के भीतर कैसे सब कुछ किया जा सकता था । यह उपर्युक्त संदर्भ में है कि नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 की प्रतिपरीक्षा महत्वपूर्ण हो जाती है । उसकी प्रतिपरीक्षा से सुसंगत उद्धरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :–

> "यह सत्य है कि अभियुक्त अपराह्न लगभग 8.00 बजे या 8.30 बजे पुलिस चौकी की ओर से आ रहा था और क्योंकि मैं घड़ी नहीं पहने हुए था इसलिए मैं निश्चित समय नहीं बता सकता । यह सत्य है कि पंजरापोल से मेरे क्वार्टर तक जाने में 15 से 20 मिनट लगते हैं

और जीवी के खेत तक जाने में 30 से 35 मिनट लगते हैं । यह सत्य है कि जीवी के खेत और सी. एन विद्यालय की ओर से बीएसएनएल के कार्यालय पर आने में आधा घंटा लगता है । यह सत्य है कि जीवी के खेत से पंजरापोल की ओर और पंजरापोल मुख्य सड़क से बीएसएनएल कार्यालय की ओर पैदल का रास्ता 40 मिनट का है । यह सत्य है कि दोनों सड़क सार्वजनिक सड़क हैं और इस सड़क से अनेक व्यक्ति गुजरते हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है ।)

उपर्युक्त घटनाओं का क्रम ऊपर निर्दिष्ट किए गए समय पर घटित हुआ था या नहीं यह आसानी से समझा जा सकता है यदि अभियोजन ने विभिन्न स्थानों के बीच दूरियों के संबंध में विस्तृत विवरण देते हुए एक रेखा मानचित्र प्रस्तुत किया होता । उस दशा में यह अवधारण करना संभव होता कि क्या विभिन्न स्थानों पर दर्शाई गई गतिविधियां जोकि घटना के संबंध में अभियोजन वर्णन से दर्शित होती है होना संभव थीं या नहीं । आहत गोमी के निवासस्थान और इसी भांति पॉलिटेकनिक या जीवी के खेत से अभियुक्त की दूरी के संबंध में किसी जानकारी के अभाव में नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 की प्रतिपरीक्षा से उद्भूत हुए प्रश्नों को अभिनिश्चित करना असंभव होगा । यदि दी गई दूरियों के संबंध में रेखा मानचित्र या विस्तृत विवरण तैयार किया गया होता, तब संबंधित न्यायालयों को घटना के अभियोजन वर्णन में अभिकथित सभी बातों का अवधारण करने में सुगमता होती । अभियोजन साक्ष्य में यह कमी मामले में एक गंभीर शिथिलता मानी जानी चाहिए ।

12. अब हम विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य में विसंगतियों पर चर्चा करेंगे । हम इसके साथ-साथ ही अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई की ओर से अंगीकृत की गई प्रतिरक्षा के प्रभाव का भी आकलन करेंगे । मामले के ये पहलू इसमें यहां नीचे संक्षिप्त रूप से वर्णित किए जा रहे हैं जिससे कि हम प्रभावी तौर पर राज्य की ओर से प्रस्तुत की गई दलीलों पर चर्चा कर सकें । मामले के ये पहलू इस संबंध में अवधारण करने के लिए विचार में लिए जाएंगे कि क्या अभियुक्त-प्रत्यर्थी की दोषिता साबित करने के लिए घटनाओं की संपूर्ण श्रृंखला बनाती है या नहीं । उपर्युक्त विचारणाएं इसमें यहां नीचे संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं :–

(क) अभियोजन द्वारा अवलंब ली गई शव-परीक्षा रिपोर्ट किसी संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती है कि गोमी के गुप्तांगों पर क्षतियों की प्रकृति मृत्युपूर्व की थी । प्रश्न जो विचारार्थ उत्पन्न होता है कि क्या निर्देशाधीन क्षतियां पहले आहत पर पहुंचाई गई थीं और तत्पश्चात् आहत के साथ बलात्संग किया गया था । यह उपधारणा करना प्राकृतिक है कि जिस व्यक्ति ने गोमी पर हमले का पहला कार्य किया था वह उसने उसके सिर पर और शरीर के अन्य भागों पर क्षतियां पहुंचाने का कार्य था, उसके पश्चात् ही केवल उसने एड़ियों के ठीक ऊपर से टांगों को काटा होगा जिससे कि वह उससे कड़ों को ले सके । हमारे लिए यह अनुध्यात करना संभव नहीं है कि मृतका की टांगें उस समय काटी गईं थीं जब वह जीवित थी, यह मानना असंभव है और इसलिए यह अत्यंत ही अप्राकृतिक भी है । अब प्रश्न जो विचारार्थ उत्पन्न होता है यह है कि क्या ऐसे विकृत चित्त के व्यक्ति के लिए भी यह मानवीय रूप से संभव नहीं था कि वह एक बालिका के साथ बलात्संग करता, जिसके सिर और शरीर के अन्य भागों पर क्षतियां पहुंचाते हुए हत्या की गई थी कि वह उसके पश्चात् उसकी टांगों से उसके पैर काट देता और उसके पश्चात् उससे बलात्संग करता । हमें इसका नकारात्मक उत्तर देने में कोई संकोच नहीं है । वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष ने स्पष्ट रूप से बलात्संग के एकीकृत के सहित एक वर्णन किया है जो तर्कणा और सामान्य बोध की कसौटी पर स्वीकार करना असंभव है ।

(ख) अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य भी यह प्रकट करता है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के गुप्तांगों के बाल की न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिक अधिकारी द्वारा जांच की गई थी । न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट (प्रदर्श-48) यह प्रकट करती है कि अभियुक्त के गुप्तांग के बालों पर न तो कोई वीर्य था और न ही कोई रक्त था । अभियोजन-प्रत्यर्थी किशनभाई के गुप्तांगों के बालों पर रक्त होने की संभावना के प्रति संदर्भ इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि मृतका की शव-परीक्षा रिपोर्ट यह प्रकट करती है कि मृतका के योनि पर रक्त था । जबकि प्रत्यर्थी किशनभाई को दंड संहिता, 1860 की धारा 376 के अधीन अपराध का दोषी अभ्यारोपित करते हुए अभियोजन के लिए मामले के उपर्युक्त पहलुओं को ध्यान में रखना आवश्यक था । अभियुक्त-प्रत्यर्थी के गुप्तांगों के बालों पर वीर्य या रक्त की अनुपस्थिति उसे प्रथमदृष्ट्या बलात्संग के अपराध से निर्दोष ठहराती है ।

(ग) परिवादी बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 के परिसाक्ष्य के अनुसार अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई घटना के समय एक सफेद रंग की कमीज पहुने हुए था । इसलिए जब आहत गोमी के शव को ढकने वाली एक सफेद कमीज पाई गई थी तब उसने उसकी कमीज के रूप में पहचान की जोकि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई अपराध कारित किए जाने के पूर्व पहने हुए था । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार जैसाकि यह विभिन्न साक्षियों के कथनों से उद्भूत होता है, यह प्रकट है कि बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 को अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई जोकि उक्त सफेद कमीज पहने हुए था को उक्त कमीज पहने हुए देखने का कोई अवसर नहीं था । जब बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 से इस संबंध में पूछताछ की गई थी कि वह अभियुक्त-प्रत्यर्थी को कैसे जानता था कि वह सफेद कमीज पहने हुए था, जब उसने आहत को शव को ढंकने वाली कमीज को पहली बार देखा था, जब उसका उत्तर यह था कि उसे उसके पिता नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 द्वारा इस बाबत बताया गया था । मामले पर इस दृष्टि से विचार करते हुए, प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 को ऊपर निर्दिष्ट की गई कमीज के संबंध में परिसाक्ष्य सत्यपूर्ण था और क्या उसका परिसाक्ष्य ऋजु और सही वर्णन किया जा सकता है ।

(घ) इसके अतिरिक्त जब अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को गिरफ्तार किया गया था उसके द्वारा पहनी गई कमीज पंचनामा अभिलिखित करते हुए उससे ली गई थी । उक्त कमीज विचारण न्यायालय के अभिलेख पर प्रदर्श-39 के रूप में उपलब्ध है । यह निर्विवादित है कि कमीज प्रदर्श-39 जो अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई द्वारा उसकी गिरफ्तारी के समय पहनी हुई थी वास्तव में एक सफेद कमीज है जिस पर ट्राईडेंट डिजाइन है । किन्तु बाबाभाई नारनभाई अभियोजन साक्षी 2 के अभिलिखित किए गए वर्णन के अनुसार जोकि परिवाद में अन्तर्निहित है जो प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज किए जाने का आधार है, यह उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई उसके निरोध के समय काली कमीज पहुने हुए था । इसमें यहां इसके ऊपर अवेक्षा की गई तथ्यपरक स्थिति से यह स्पष्ट है कि परिवादी बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 द्वारा अभिव्यक्त की गई तथ्यपरक स्थिति पूर्णतया गलत थी और तथ्यपरक स्थिति के प्रतिकूल थी । मामले पर इस दृष्टि से विचार करते हुए एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 का अभिसाक्ष्य ऋजु और

सही था ।

(ङ) घटना के समय अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तलाश दल अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई से अपराह्न लगभग 8.00 बजे मिला था । उक्त दल तब जीवी के खेत की ओर गया था जहां से आहत का शव बरामद किया गया था । नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के अनुसार शव को पाने के पश्चात् वह पुलिस थाने गए थे । पुलिस थाने पर उन्होंने पुलिसकर्मियों से घटनास्थल जाने का अनुरोध किया था । इसके साथ ही नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 ने यह कथन किया था कि जब किशनभाई से पूछताछ की जा रही थी, तब पुलिसकर्मी अभियुक्त-प्रत्यर्थी को ले गए थे । नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के परिसाक्ष्य के अनुसार इसलिए अधिक से अधिक अभियुक्त-प्रत्यर्थी को तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न लगभग 9.00 बजे पुलिस अभिरक्षा में ले गया समझा जाना चाहिए । यह प्रकट है कि घटना तलाश दल के अनेक व्यक्तियों की जानकारी में आई थी, जब आहत का शव जीवी के खेत में पाया गया था । इसके पूर्व भी अभियुक्त-प्रत्यर्थी पहले से ही पुलिस अभिरक्षा में था । ऐसा लगता है कि पुलिस ने जीवी के खेत से गोमी के शव की बरामदगी के पूर्व ही किशनभाई की दोषिता का पहले ही निष्कर्ष निकाल लिया था । उपर्युक्त के बावजूद अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई की गिरफ्तारी तारीख 28 मार्च, 2003 को पूर्वाह्न 6.40 पर दर्शाई गई थी । अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई का तारीख 27 फरवरी, 2003 के अपराह्न 9.00 बजे से तारीख 28 मार्च, 2003 के पूर्वाह्न 6.40 बजे तक निरोध यह दर्शित करता है कि अभियोजन ने मामले को अन्वेषक अभिकरणों को बताई गई घटनाओं की रीति में प्रस्तुत नहीं किया था ।

(च) यह अवेक्षा किए जाने की भी आवश्यकता है कि मृत्युसमीक्षा पंचनामा में आहत की एड़ियों के ऊपर से उसकी टांगें काटे जाने का उल्लेख किए जाने के अलावा यह भी लेखबद्ध किया गया है कि गोमी द्वारा पहने गए चांदी के कड़े लापता थे । इस निमित्त यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि यद्यपि मृत्युसमीक्षा पंचनामा तारीख 28 फरवरी, 2003 को 00.30 बजे पूर्वाह्न पर तैयार किया गया था, प्रथम इत्तिला रपोर्ट के दर्ज किए जाने को परिणाम करने वाला परिवाद बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2013 को पूर्वाह्न 3.05 पर दर्ज कराई गई थी । यह आश्चर्यजनक है कि मृत्युसमीक्षा पंचनामा प्रथम इत्तिला सूचना के दर्ज किए जाने के पूर्व ही तैयार किया गया था । यह भी आश्चर्यपूर्ण है कि किस प्रकार मृत्युसमीक्षा पंचनामा तैयार करते समय

उसके पंच यह अभिलिखित कर सकते थे कि आहत की टांगों के काटे जाने के पश्चात् अपराधी द्वारा उसके चांदी के कड़े ले लिए गए थे । पंचों के लिए यह जानने का कोई अवसर भी नहीं था कि गोमी प्रायः चांदी के कड़े पहनती थी । तदनुसार उनके लिए ऐसा कोई अवसर नहीं था कि प्रायिक रूप से पहने गए चांदी के कड़े अपराधी द्वारा ले लिए गए थे ।

(छ) अभियोजन पक्षकथन जोकि विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलिखित साक्ष्य से उद्भूत हुआ है, यह प्रकट है कि तलाश दल और इसी भांति आहत के रिश्तेदार तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न लगभग 8.00 बजे इस बात की जानकारी थी कि गोमी की हत्या कर दी गई थी और उसके साथ बलात्संग किए जाने की भी संभावना थी और उसके चांदी के कड़े चुरा ले गए थे । उपर्युक्त के बावजूद कोई परिवाद जो कोई भी हो तारीख 27 फरवरी, 2003 को पुलिस थाने पर अभिलिखित घटना के संबंध में दर्ज नहीं कराया गया था बावजूद तलाश दल और पुलिस के बीच तारीख 27 फरवरी, 2003 के अपराह्न 8.00 बजे से दोनों के बीच निकट समन्वय के बावजूद भी दर्ज नहीं कराया गया था । प्रथम इत्तिला सूचना के फाइल किए जाने को परिणाम करने वाला परिवाद तारीख 28 फरवरी, 2003 को पूर्वाह्न लगभग 3.05 पर किया गया था, न केवल परिवाद के दर्ज किए जाने में सात घंटे के विलंब को समझना कठिन है अपितु यह इस तथ्य के कारण भी अत्यंत संदिग्ध बन जाता है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई तारीख 27 फरवरी, 2003 के अपराह्न 9.00 बजे से ही पुलिस अभिरक्षा में होना स्वीकार किया गया है । यह आहत गोमी के लापता होने के समय और तारीख और इसी भांति आहत के शव के पता लगाने के समय और तारीख जिसके कारण से स्वयं घटना का पता चला को अनाप-शनाप बताने का परिणाम हो सकता है । प्रश्न जो विचारार्थ उत्पन्न होता, यह है कि अन्वेषक अभिकरण ने वास्तविक घटना से भिन्न रीति में घटना को दर्शाने के लिए आवश्यक विस्तार की प्रायिक प्रक्रिया को अंगीकृत किया है । एक प्रश्न इस संबंध में यह भी उत्पन्न होता है कि अन्वेषक अभिकरण के लिए क्यों यह आवश्यक था कि वह उपर्युक्त प्रक्रिया इस तथ्य के बावजूद अंगीकृत करता कि यह एक खुला मामला दर्शाया गया था ।

(ज) जैसीकि ऊपर अवेक्षा की गई है कि बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 और नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 के कथनों से यह प्रकट है कि अभियुक्त पुलिस द्वारा अनौपचारिक रूप से तारीख 27 फरवरी, 2003 को अपराह्न लगभग 9.00 बजे निरुद्ध किया

गया था । यह अवेक्षा करना भी आवश्यक है कि उपर्युक्त प्रभाव के संबंध में उप-निरीक्षक नारनभाई लालभाई देसाई अभियोजन साक्षी 13 जिसने निर्देशाधीन अपराध का अन्वेषण प्रारंभ किया था द्वारा भी स्वीकार किया गया था । यह प्रकट है कि जब बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 ने जब निर्देशाधीन अपराध के संबंध में विवरणों के साथ उनसे संपर्क किया तब उन्होंने पुलिस थाना छोड़ने से पूर्व थाना डायरी में कोई प्रविष्टि अभिलिखित नहीं की गई थी । यह स्वयं में एक गंभीर लोप गठित करता है । अपनी प्रतिपरीक्षा में उन्होंने इसकी पुष्टि की है कि उन्हें अभियोजन साक्षी 2 बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अर्थात् परिवादी घटनास्थल पर ले गया था । घटनास्थल पर जाने में और घटनास्थल पर अन्वेषण करने पर उन्होंने पुलिस थाना लौट जाना स्वीकार किया । अपने कथन में उन्होंने स्वीकार किया कि जब वह घटनास्थल का दौरा करने के पश्चात् पुलिस थाने पर वापस पहुंचे, तब अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई पुलिस थाने पर वहां पहले से ही उपस्थित था । जब पूछताछ की गई तब वह इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सका कि किस प्रकार से अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई पुलिस थाने पर पहुंचा था । एक साक्षी के रूप में अपने कथन में, उसने यह अभिव्यक्त किया था कि पहली बात उसने अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को केवल तारीख 28 फरवरी, 2003 को पूर्वाह्न लगभग 5.30 पर ही देखा था । जिसके पश्चात् अभियुक्त-प्रत्यर्थी को औपचारिक रूप से पूर्वाह्न 6.40 पर गिरफ्तार किया गया था । एक ओर परिवादी बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2 और उसके पिता नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 और दूसरी ओर उप-निरीक्षक नारनभाई लालभाई देसाई अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को निरोध के संबंध में एक गंभीर विरोध प्रकट करती है । यह अवेक्षा किया जाना भी आवश्यक है कि यह नारनभाई लालभाई देसाई अभियोजन साक्षी 13 के लिए यह असामान्य था कि वह थाना डायरी मे कोई प्रविष्टि किए बिना पुलिस थाने छोड़कर गया था । एक पुलिस अधिकारी जोकि ऐसी एक जघन्य प्रकृति के अपराध का अन्वेषण कर रहा हो वह ऐसी चूक कैसे कारित करेगा ? यह तथ्य कि उसने ऐसा किया था, यह विवाद का विषय नहीं है । मामले का सत्य यह है कि नारनभाई लालभाई देसाई अभियोजन साक्षी 13 ने न तो थाना डायरी और न ही किसी अन्य अभिलेख में कोई टिप्पण दर्ज किया था और उसने परिवादी से भी कोई अनौपचारिक परिवाद लिया था, यद्यपि उसे अपराध के कारित किए जाने के संबंध में बताया गया था । इसलिए यह स्पष्ट है कि नारनभाई लालभाई देसाई अभियोजन साक्षी 13 थाने से अपने

प्रस्थान के प्रयोजन को दर्शाते हुए कोई प्रविष्टि किए बिना ही पुलिस थाने से गया था । यह सभी जिस रीति में मामले का अन्वेषण किया गया उसके संबंध में संदेह उत्पन्न करता है ।

(झ) जहां तक दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के कथन का संबंध है, उन्होंने यह अभिसाक्ष्य देते हुए अभियोजन पक्षकथन का समर्थन किया था कि अभियुक्त एक छोटी बालिका जो लगभग 7 वर्ष की आयु की थी के साथ उसकी "लाड़ी" पर आया था । उसके आगे प्राख्यान किया कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई ने उससे "एक दबेली" खरीदी थी । उसने यह भी प्रमाणित किया कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने उससे चाकू के लिए कहा था किन्तु उसने उसे चाकू देने से इस कारण इनकार किया था कि जब अभियुक्त-प्रत्यर्थी उसकी लाड़ी पर आया था, तब वहां पर अनेक ग्राहक दबेलियां खरीदने के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे । इसके आगे उसने यह पुष्टि की कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने उसके द्वारा सब्जियां काटने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले चाकू को उसकी लाड़ी से चुराया था । मामले का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 का कथन यह है कि उसने उस कमीज की शनाख्त की थी वह अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई उस समय पहने हुए था जब वह तारीख 27 फरवरी, 2003 को एक दबेली खरीदने के लिए उसकी लाड़ी पर आया था । उसने उक्त समय आहत द्वारा पहनी गई लाल रंग की फ्राक की भी शनाख्त की थी । इसके अतिरिक्त उसने उस चाकू की भी शनाख्त की थी जोकि अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई ने उसकी लाड़ी से चुराई थी । दिनेश करसन भाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 का कथन उच्च न्यायालय द्वारा मुख्य रूप से इस कारण अविश्वसनीय विचार किया गया था कि वह अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई द्वारा पहनी गई कमीज की शनाख्त कर सकता था जब वह उस समय दबेली खरीदने के लिए उसकी लाड़ी पर आया था तब अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई उसकी लाड़ी पर लगभग 10-15 मिनट तक रहा था जब वहां पर ग्राहकों की कोई भीड़ नहीं थी । इसके प्रतिकूल वह अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के संबंध में नवरंगपुर पुलिस थाना, अहमदाबाद पर लगभग 4 घंटे तक मौन रहा था । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान वह एक कमीज के संबंध में कुछ अभिवाक् नहीं कर सका जोकि अभियुक्त-प्रत्यर्थी नवरंगपुर पुलिस थाना, अहमदाबाद पर पहने हुए था । इसलिए यह प्रकट है कि दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 जो उसे स्मरण था उसके आधिक्य में अभिसाक्ष्य दे रहा था और/या उसके आधिक्य में अभिसाक्ष्य दे रहा था जो वस्तुतः उसकी जानकारी में था वह

एक सिखाया-पढ़ाया गया साक्षी प्रतीत होता है । मामले का यह पहलू भी दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के परिसाक्ष्य को संदिग्ध बनाता है ।

(ञ) दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 से संबंधित संविवाद का एक अन्य पहलू भी है । अन्वेषक अभिकरण को अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई द्वारा दिए गए तारीख 1 मार्च, 2003 के प्रकटन कथन से यह जानकारी हुई कि उसने दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के "लाड़ी" से अपराध का हथियार चोरी कर प्राप्त किया था । उपर्युक्त चाकू अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई के बताए जाने पर तारीख 1 मार्च, 2003 को पंच साक्षियों की उपस्थिति में बरामद किया गया था । मामले पर इस दृष्टि से विचार करते हुए अन्वेषण के सामान्य अनुक्रम में अन्वेषक अभिकरण के लिए यह आवश्यक रहा होगा कि वह तुरंत ही दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 का कथन अभिलिखित करने के लिए उससे मिलता । उसका कथन इस साधारण कारण से अत्यंत ही महत्वपूर्ण था कि यह अभियुक्त को अपराध के हथियार जिससे कि अपराध कारित किया गया था से जोड़ता और यह आहत से भी उसे जोड़ता । उपर्युक्त के बावजूद अन्वेषक अभिकरण से पहली बार तारीख 4 मार्च, 2003 को दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के कथन को अभिलिखित किया । इस संबंध में कोई कारण नहीं दिया गया है कि उसका कथन तारीख 1 मार्च, 2003 या तारीख 4 मार्च, 2003 की मध्य तारीखों पर क्यों अभिलिखित किया गया था । अपराध के हथियार के संबंध में अभियुक्त प्रत्यर्थी के कथन की पुष्टि करने के अन्वेषक अभिकरण द्वारा असामान्य विलंब अभियोजन पक्षकथन को संदिग्ध बनाता है । ऐसा विलंब अन्वेषण के सामान्य अनुक्रम में नहीं होता । यदि विलंब के लिए वहां पर छोटे कारण थे तब वे विश्वसनीय साक्ष्य के माध्यम से विचारण न्यायालय की जानकारी में लाए जाने चाहिए थे । यह तथ्य घटना के संबंध में अभियोजन वर्णन की शुद्धता के संबंध में संदेह उत्पन्न करता है ।

अभियोजन पक्षकथन में उपर्युक्त विसंगतियां उच्च न्यायालय द्वारा सम्यक् रूप से अवेक्षा की गईं थीं । यह आक्षेपित आदेश में अभिलिखित किए गए कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण हैं । विरोध की अन्य बातें भी आक्षेपित आदेश में अवेक्षा की गईं थीं । हमारे लिए उन सभी को अभिलिखित करना आवश्यक नहीं है, चूंकि उपर्युक्त उदाहरण स्वयं कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण निष्कर्षों को निकाले जाने के लिए पर्याप्त हैं । उपर्युक्त के आधार पर

निकाले गए कुछ निष्कर्ष नीचे अवेक्षा किए जा रहे हैं । अभियोजन पक्षकथन जोकि मौखिक रूप से बाबाभाई नारनभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 2, नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 और दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के परिसाक्ष्य पर आधारित है, वह उनके कथनों पर प्रकट विसंगतियों के कारण अविश्वसनीय है । अन्वेषक अधिकारी नारनभाई लालभाई देसाई अभियोजन साक्षी 13 का परिसाक्ष्य बकवाद को दर्शित करता है जो उसके अभिसाक्ष्य को अभरोसेमंद बनाता है । प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य के अभाव में अभियोजन पक्षकथन लगभग पूर्णतया ऊपर वर्णित साक्षियों पर आधारित है । उपर्युक्त कारणों से उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के माध्यम से इसे अभियुक्त-प्रत्यर्थी किशनभाई को संदेह का लाभ प्रदान करने के लिए एक ऋजु और उचित मामला पाया ।

13. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान दांडिक अपील में न्यायिक पूर्व निर्णयों के साथ प्रस्तुत की गई दलीलों (जो इसमें यहां इसके ऊपर पैरा 9 में अभिलिखित की गई है) का समर्थन करने के लिए इस न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक निर्णयों पर अवलंब लिया है । अब हम इसमें यहां इसके नीचे अवलंब लिए गए निर्णय और इसी भांति उनके आधार पर विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई दलीलों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करेंगे ;

(क) **राम प्रसाद और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह प्राख्यान किया गया था कि कुछ प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों की परीक्षा न किया जाना अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक शैथिल्यता प्रस्तुत न करना विशेष रूप से जब दोषिता अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर आधारित की जा सकती है ।

(ख) **टखाजी हीराजी** बनाम **थाकोरे कुबेरसिंह कमानसिंह और अन्य**[2] वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया गया था और यह उल्लेख किया गया था कि इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि ऐसे मामलों में जहां पहले ही परीक्षा किए जा चुके हैं साक्षी विश्वसनीय थे और उनके द्वारा किया गया परिसाक्ष्य अखंडनीय थे, वहां कोई न्यायालय अन्य साक्षियों की परीक्षा न किए जाने के तथ्य से अप्रभावित हुए बिना उसके आधार पर निरापद

---

[1] [1974] 1 एस. सी. आर. 650.

[2] (2001) 6 एस. सी. सी. 145.

रूप से कार्रवाई कर सकता है । तब भी पुनः निष्कर्ष यह था कि अभियुक्त की दोषिता का अवधारण करने के लिए विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध होना चाहिए और मामले पर इस दृष्टि से विचार करते हुए यह असंगत होगा कि कुछ अन्य व्यक्तियों जो विवाद्यक तथ्यों पर अभिसाक्ष्य दे सकते थे, की परीक्षा नहीं की गई थी ।

(ग) **लक्ष्मण नायक** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के आधार पर यह दलील दी गई थी कि एक सात वर्ष की आयु की बालिका जिसके साथ उसके स्वयं के चाचा द्वारा बलात्संग और हत्या की गई थी से संबंधित मामले में साक्षियों के अपराधों में आलिप्त करने वाले साक्ष्य और परिसाक्ष्य पर अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब परिस्थितियां घटनाओं की एक पूर्ण श्रृंखला गठित करती है, तब यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि अभियुक्त अपराध का कर्ता है और पारिस्थितिक साक्ष्य की संपूर्ण श्रृंखला के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है ।

(घ) **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सुरेश**[2] वाले मामले में दोषी ने चार वर्ष की बालिका के साथ बलात्संग किया गया था और उसकी हत्या की गई थी, वाले मामले में दिए गए निर्णय के आधार पर यह दलील दी गई थी कि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि न्यायालय को यह उपधारणा करने की स्वतंत्रता थी कि अभियुक्त अभिकथित अपराध में अपने अन्तर्वलित होने के कारण अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री या शव के संबंध में जानता था । जब वह ऐसी अपराधों में आलिप्त करने वाली सामग्री की अवस्थिति के संबंध में उस रीति को बताए बिना जिसमें कि उसे उसकी जानकारी हुई थी, बताता है, तब न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि अभियुक्त अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री के संबंध में जानता था ।

(ङ) **अमर सिंह** बनाम **बलविन्दर सिंह**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णय पर अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई थी कि जहां अभियोजन पक्षकथन साक्षियों के परिसाक्ष्य द्वारा पूर्णतया साबित किया गया है जिसकी चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि की गई है, वहां अन्वेषक अधिकारी की कोई

---

[1] (1994) 3 एस. सी. सी. 381.

[2] (2000) 1 एस. सी. सी. 471.

[3] (2003) 2 एस. सी. सी. 578.

विफलता या लोप अभियोजन पक्षकथन को संदेहपूर्ण या विश्वास के अयोग्य ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता । इस अवधारणा से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि यथा कि जब किसी अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध होता है, वहां अन्वेषण में लोप के आधार पर किसी अभियुक्त को संदेह का लाभ प्रदान करने के लिए आधार नहीं बन सकता ।

(च) **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार** बनाम **सुनील**[1] वाले मामले में निर्दिष्ट करते हुए यह प्राख्यान किया गया था कि ऐसे मामले में जहां चार वर्ष की आयु की बालिका के साथ वीभत्सता से बलात्संग और हत्या की गई थी और अपराध में आलिप्त करने वाली वस्तु अभियुक्त के कथन के आधार पर बरामद की गई थी, वहां यह तकनीकी आधार पर त्यक्त नहीं किए जा सकते कि किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई थी ।

(छ) **जोसेफ** बनाम **केरल राज्य**[2] वाले मामले में निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए जिसमें विद्वान् काउंसेल के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां साबित की गई परिस्थितियां स्वयं ही एक पूर्ण श्रृंखला बनाती है और अपीलार्थी की दोषिता को बिना किसी त्रुटि के इंगित करती है, तब यह अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार हो सकते हैं । विद्वान् काउंसेल के अनुसार यह पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार किसी अभियुक्त की दोषिता को साबित करने की रीति को प्रदर्शित करता है ।

(ज) **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णय के आधार पर यह दलील दी गई थी कि व्यापक आधार के नियम के रूप में यह अभिकथित नहीं किए जा सकते कि यदि किसी विशेष साक्षी की परीक्षा किए जाने में कोई विलंब हुआ है, तब अभियोजन वर्णन संदिग्ध बन जाता है, इसलिए विलंब के निकटवर्ती तथ्य प्रत्येक मामले में यह अवधारणा करने के लिए विचार में लिए जाने चाहिए कि क्या दिया गया परिसाक्ष्य संदेहपूर्ण है या नहीं ।

(झ) **बिष्णु प्रसाद सिन्हा** बनाम **असम राज्य**[4] वाले मामले में दिए गए

---

[1] (2001) 1 एस. सी. सी. 652.

[2] (2005) 5 एस. सी. सी. 197.

[3] (2005) 3 एस. सी. सी. 114.

[4] (2007) 11 एस. सी. सी. 467.

निर्णय पर अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई थी कि उपर्युक्त मामले में जहां 7-8 वर्ष की आयु की बालिका बलात्संग और हत्या की पीड़िता थी, वहां यह आधार कि अन्वेषण अनुचित रीति में किया गया था यह संपूर्ण अभियोजन पक्षकथन को झूठा नहीं बना सकता था । यथा, जहां विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध है वहां यह किसी अभियुक्त की दोषिता का अवधारण करेगा ।

(ञ) **अफताब अहमद अंसारी** बनाम **उत्तरांचल राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए यह प्राख्यान किया गया था कि जहां पांच वर्ष की बालिका के साथ बलात्संग किया गया और उसकी हत्या की गई थी और अभियुक्त ने अपराध के स्थान और अपराध में आलिप्त करने वाली वस्तुओं को भी प्रकट किया था, वहां उक्त प्रकटन ग्राह्य था और यह परिस्थितियों की संपूर्ण श्रृंखला गठित करेगा । इसके अतिरिक्त विद्वान् काउंसेल के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मृत्युसमीक्षा पंचनामा में प्रत्येक विवरण नहीं हो सकता और कुछ विवरणों का अभाव साक्षियों द्वारा किए गए अभिसाक्ष्य की शिथिलता को प्रभावित नहीं करेगा । यहां यह उल्लेख करना अनावश्यक है कि पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला में महत्वपूर्ण कड़ियों के अभाव के आधार पर अभियुक्त को छोड़ दिया जाएगा ।

(ट) **शंभू दास** बनाम **असम राज्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय पर यह दलील देने के लिए अवलंब लिया गया था कि मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट या शव-परीक्षा रिपोर्ट में कोई विसंगति न तो घातक हो सकती है और न ही संदेहपूर्ण परिस्थिति के आधार पर कही जा सकती है जिसके आधार पर अभियुक्त को फायदा दिया जा सके और अभियोजन पक्षकथन को पारिणामिक रूप से खारिज किया जा सके । यहां यह जोड़ना अनावश्यक है कि अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए पर्याप्त स्वतंत्र साक्ष्य होना चाहिए ।

(ठ) **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णय के आधार पर यह दलील दी गई थी कि एक 10 वर्ष की आयु की बालिका के साथ बलात्संग और उसकी हत्या के मामले में यह पाया गया था कि जहां संचयी रूप से परिस्थितियां दोषिता के निष्कर्ष को

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 583.

[2] (2010) 10 एस. सी. सी. 374.

[3] (2011) 12 एस. सी. सी. 56.

परिणाम करती है और अभियुक्त द्वारा कोई अनुकल्पीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, वहां दोषसिद्धि मान्य ठहराई जानी चाहिए । इस मामले में यह दोहराया गया है कि पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मामले में साक्ष्य ऐसा होना चाहिए जिसके आधार पर अकेले अभियुक्त की दोषिता का निष्कर्ष निकलता हो और किसी अन्य व्यक्ति का नहीं ।

(ड) **राजेन्द्र प्रहलादराव वासनिक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय पर अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई थी कि जहां तीन वर्ष की आयु की बालिका के साथ बलात्संग और उसकी हत्या अभियुक्त द्वारा की गई थी जो उसे बिस्किट खरीदकर देने के बहाने उसको लोभ देकर उसे ले गया था, परिस्थितियां उस रीति को दर्शित करती हैं जिसमें कि विश्वास/भरोसा/नातेदारी का उल्लंघन किया गया था और परिणामस्वरूप अभियुक्त पर अधिरोपित मृत्युदंड की पुष्टि की गई थी ।

14. हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर गहन विचार किया है जो इसमें यहां इसके ऊपर पैरा 9 में सम्यक् रूप से अवेक्षा की गई है । हमारे लिए यह अभिलिखित करना भी सुसंगत है कि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने इसमें इसके ऊपर पैरा 9 में हमारे द्वारा अवेक्षा की गई दलीलों के अतिरिक्त इसमें एक भी निवेदन नहीं किया है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों द्वारा समर्थन किए जाने की ईप्सा किए गए थे जो सभी ऊपर पैरा 13 में निर्दिष्ट किए गए हैं । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन उद्धृत प्रत्येक निर्णय पर आधारित हैं और यह भी हमारे द्वारा उक्त पैरा में अभिलिखित किया गया है । इस मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, विशेष रूप से अन्वेषण और अभियोजन पक्षकथन में कारित किए गए स्पष्ट लोपों (वर्तमान साक्ष्य के पैरा 11 में अभिलिखित) को देखते हुए और अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य में प्रकट विसंगतियों (इसमें यहां इसके ऊपर पैरा 12 में जिन्हें संक्षिप्त में दिया गया है) को भी देखते हुए हमारा यह सुविचारित मत है कि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा किया गया प्रत्येक निवेदन गुणता रहित है । अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए पारिस्थितिक साक्ष्य के लिए, बाबाभाई नारनभाई सोलंकी

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 37.

अभियोजन साक्षी 2, नारनभाई मनाभाई सोलंकी अभियोजन साक्षी 5 और दिनेश करसनभाई थाकोरे अभियोजन साक्षी 6 के कथनों पर मुख्य रूप से अवलंब लिया गया है । उपर्युक्त साक्षियों के कथनों में विसंगतियों और शिथिलताओं को प्रकट करते हुए, उनके कथनों को भी संदिग्ध बना दिया गया है और तदनुसार अविश्वसनीय बन गया है । अन्तर्वलित अभिकरणों के द्वारा बकवाद के संबंध में भी एक गंभीर छाप है । तथ्यपरक रूप से साक्षियों के कथनों में सत्यता का अभाव विभिन्न अभियोजन साक्षियों के द्वारा अभिव्यक्त तथ्यात्मक स्थिति से उद्‌भूत सरल तर्कणा द्वारा प्रकट किया गया है (ऊपर पैरा 11 और 12 में संक्षिप्त रूप से दिया गया है) । आरोपों को साबित करने के लिए प्रस्तुत किया गया साक्ष्य तथ्य रूप में खंडित किया गया है और तद्‌द्वारा अभियोजन पक्षकथन को खंडित किया गया है । इस सब से और अधिक, साक्ष्य का प्रस्तुत न किया जाना है जोकि अभियोजन ने अनुचित रूप से विदारित किया है जिसके परिणामस्वरूप राज्यों के सभी प्रयास धरासायी हो गए । हमारे लिए अभिलेख पर अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर हमारे द्वारा की गई विस्तृत अवधारणा को अभिलिखित करना ऐसे कारणों से आवश्यक नहीं है जोकि इसमें यहां इसके ऊपर पैरा 11 और 12 में अवेक्षा की गई तथ्यपरक स्थिति से स्पष्ट रूप से उद्‌भूत हुए हैं । कारणों को बारबार अभिलिखित किया जाना विषय को दोहराना मात्र होगा । उपर्युक्त को देखते हुए, हम इस अपील में कोई गुणता नहीं पाते हैं और तदनुसार यह खारिज की जाती है ।

15. इस मामले के प्रस्तुत किए जाने में सम्मिलित अन्वेषक अधिकारी और लोक अभियोजक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में अत्यंत ही विफल रहे हैं । वे न्याय के उद्देश्य को पूरा करने में विफल रहे हैं । आहत गोमी के परिवार का दुख का समाधान नहीं होगा और उन्हें कोई न्याय नहीं मिला । आहत के साथ किए गए अत्यंत ही जघन्य और घोरतापूर्ण व्यवहार के अपराधकर्ता अदंडित ही रहे हैं । एक हृदयहीन और क्रूर अपराधी जिसने एक अत्यंत ही जघन्य अपराध कारित किया है वह स्वयं छूट गया है । वह अहमदाबाद या भारत के किसी अन्य शहर/कस्बे में अपना सिर ऊंचा करके घूम रहा होगा । अपराधी घूम रहा है । निर्भय और बिना किसी डर के । अब भी बिना किसी डर के है, क्योंकि उसे वह दंड नहीं दिया गया जोकि उसे दिया जाना चाहिए था, और उसके द्वारा कारित किए गए जघन्य अपराध से अप्रभावित होते हुए उसे कुछ डर भी नहीं है । अब उसके कृत्यों पर कोई अड़चन या बाधा नहीं है । उसे एक अच्छे चित्त के व्यक्ति के

समान व्यवहार न करके गलत कार्यों को करने की प्रत्याशा की जा सकती है ।

16. अब जैसे ही हम इस वर्तमान दांडिक अपील का विनिश्चय करने के अपने दायित्व का निर्वहन करने को अग्रसर होते हैं, हम विधि के सिद्धांतों को लागू करने के लिए अग्रसर होते हैं और तदनुसार निष्कर्ष निकालेंगे । क्योंकि यह हमारा कार्य है । हम प्रशिक्षित हैं, और दया या सहानुभूति से प्रभावित नहीं हो सकते । हम बिना पक्षपात के और परिणामों का विचार किए बिना निर्णय देने के लिए प्रशिक्षित हैं । हमसे भलीभांति तय की गई कसौटियों के आधार पर निर्णय करने की अपेक्षा की जाती है । हमने वह सब किया है । इसके बावजूद हम दुखी हैं और हमारा हृदय वेदना से पूर्ण है और अत्यंत ही आहत हैं । हम एक निर्दोष बालिका के प्रति न्याय देने के कार्य को पूरा नहीं कर सके । हम उसके परिवार के प्रति भी न्याय देने के कार्य को पूरा नहीं कर सके । गोमी के परिवार के उद्देश्य अपनी बालिका की एक ऐसे जघन्य अपराधी से पर्याप्त रूप से संरक्षा करने के लिए अपने को दोष देने से कभी नहीं रोक सकते जैसे अपराधी ने उनकी सजगता में चूक के कारण उसके साथ जघन्यता से व्यवहार करते हुए उसके जीवन को भी छीन लिया । यदि हेतुक के संबंध में अभियोजन पक्षकथन सही है, तब अपराध मात्र एक हजार रुपए की रकम के लिए कारित किया गया था ।

17. हर बार जब कोई दोषमुक्ति की जाती है तब परिणाम ठीक ऐसे ही होते हैं जैसे कि इसमें यहां इसके ऊपर अवेक्षा किए गए हैं । न्याय का प्रयोजन प्राप्त नहीं हुआ । मामले के एक अन्य पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए । हमने अभियुक्त प्रत्यर्थी को संदेह का लाभ देते हुए उच्च न्यायालय के आदेश को मान्य ठहराते हुए निर्दोष घोषित किया है । वह हो सकता है कि बिल्कुल निर्दोष हो या वह अन्वेषक/अभियोजन दलों द्वारा कारित की गई चूकों के कारण सफल हुआ हो । यदि वह दोषी होने के बावजूद बच निकलता है, तब अन्वेषक और अभियोजन अभिकरणों द्वारा यह सब गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण किया गया समझा जाएगा और यदि अभियुक्त को गलत तौर पर अभियोजित किया गया था तब उसकी पीड़ा भी अत्यंत रही होगी । इस प्रक्रम पर भी अन्वेषक और अभियोजन अभिकरणों को दोष दिया जा सकता है । इसलिए यह आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा प्रथमतया मामले के विचारण के दौरान और इसके पश्चात् अपीली प्रक्रमों पर भोगी गई कठिनाई को भी अनदेखा न किया जाए । कोई निर्दोष व्यक्ति

को एक लंबी मुकदमेबाजी जो एक दशक तक चली के दौरान पीड़ा उठाने के लिए दायी नहीं होता । अभियुक्त द्वारा अपनी प्रतिरक्षा में किए गए खर्चों से उसके संपूर्ण वित्तीय स्रोत पूर्वजों या व्यक्तिगत रूप से अर्जित की गई हो, भी समाप्त हो सकते हैं । दांडिक मुकदमेबाजी में भी साधारणतया आर्थिक ऋण लिए जाने सम्मिलित होते हैं । कोई भी अभियुक्त वित्तीय ऋण के अधीन ही रहा होगा जब तक कि उसका मामला निपट नहीं जाता ।

18. इस न्यायालय के समक्ष गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्तियों की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत की प्रार्थना करते हुए या पहले से निरोधाधीन व्यक्तियों की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 के अधीन जमानत के लिए आवेदन करते हुए अनेक याचिकाएं फाइल की गई हैं । ऐसी अनेक याचिकाओं में मुख्य दलील मिथ्या से फंसाए जाने का होता है । इसी भांति अनेक याचिकाएं दिन प्रतिदिन दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अनेक याचिकाएं फाइल की जाती हैं जिनमें भी मुख्य दलील कपट से आलिप्त किए जाने/या फंसाए जाने की होती हों । ऐसे मामलों में जहां अग्रिम जमानत या जमानत के लिए धाराओं 438 और 439 के अधीन की गई प्रार्थनाएं नामंजूर की गई हैं या जहां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई याचिका नामंजूर की जाती है, वहां संबंधित व्यक्ति को विभिन्न समयावधियों के लिए कारावास भोगना होता है । वे अपने विचारण के पूरा होने तक अधिकतर समय निरुद्ध और बंदी ही रहते हैं (कम से कम वहां जहां वे गंभीर अपराधों के अभियुक्त हैं) । उनकी दोषसिद्धि के मामले में वे अपीली प्रकरणों के दौरान भी सतत रूप से निरुद्ध रहेंगे और ऐसे मामलों में जिनमें उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलें की गई हैं वहां इस न्यायालय द्वारा उनकी अपीलों का निपटारा किए जाने तक निरुद्ध रहेंगे । जिस समय वे अपीली प्रकरण पर दोषमुक्त किए जाते हैं, तब तक वे अभिरक्षा में अनेकों वर्ष तक का कारावास भोग चुके होते हैं । जब इस न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाते हैं, तब तक वे 10 वर्ष या उससे अधिक का कारावास भोग चुके होते हैं । जब उन्हें विचारण न्यायालय या अपीली न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया जाता है तब उनसे जो कुछ गलत तौर पर ले लिया गया था वह उन्हें वापस नहीं किया जा सकता । न्याय देने के लिए जिम्मेदार प्रणाली उनकी निरुद्ध की अवधि के बराबर उनके जीवन के वर्षों से वंचित करने के लिए

जिम्मेदार होती है । यह असत्य नहीं है कि सभी गलत कारणों से निर्दोष व्यक्तियों को दांडिक अभियोजन की घोरता को भोगना होता है और इसके साथ ही लज्जा और अपमान को भोगना होता है । जैसे कि यह न्यायालय का आबद्ध कर्तव्य है कि सभी पीड़ित को न्याय प्रदान करे, इस पर यदि न्यायालय का यह सुनिश्चित करने का भी आबद्ध कर्तव्य है कि कोई निर्दोष व्यक्ति को दांडिक अभियोजन की कठोरता के अध्यधीन न किया जाए ।

19. ऊपर निर्दिष्ट की गई स्थिति में सुधार किए जाने की आवश्यकता है । उक्त प्रयोजन के लिए एक उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु एक सरल प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है । तदनुसार हम यह निदेश देते हैं कि किसी दांडिक मामले में अन्वेषण के पूरा होने पर, अभियोजन अभिकरण को अपने चित्त का प्रयोग करना चाहिए और सभी शैथिल्यताओं को दूर करने की आवश्यकता है यदि आगे, अन्वेषण की अपेक्षा करते हुए यह आवश्यक हो । यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अन्वेषण के दौरान एकत्रित किए गए साक्ष्य का पूरी सत्यता और विश्वासपूर्वक यह संतुष्टि करते हुए उपयोग किया जाए कि सभी सुसंगत साक्षी और सामग्रियां जोकि आरोपों को साबित करने के लिए हैं को, किसी मामले के विचारण के दौरान भानतापूर्वक प्रस्तुत किया जाए । यह दो प्रयोजन पूरे करेगा । केवल ऐसे व्यक्ति जिनके विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य हैं उन्हें ही दांडिक अभियोजन की कठोरता को भोगना होगा । उपरोक्त प्रक्रिया का अनुसरण करने के द्वारा अधिकतर दांडिक अभियोजनों में, संबंधित अभिकरण अभियुक्त की दोषिता को सफलतार्पूक साबित करने में समर्थ होंगे ।

20. प्रत्येक दोषमुक्ति को न्याय का हित पूरा करने में न्याय प्रदान करने की प्रणाली की विफलता के रूप में समझा जाना चाहिए । इसी भांति प्रत्येक दोषमुक्ति से साधारणतया यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि किसी निर्दोष व्यक्ति का गलत तौर पर अभियोजन किया गया था । इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य प्रक्रियात्मक तंत्र का सुचारु रूप से पालन करे जो यह सुनिश्चित करेगा कि न्याय का उद्देश्य पूरा हुआ है जो समसामयिक रूप से निर्दोष व्यक्तियों के हितों का रक्षोपाय सुनिश्चित करेगा । उपर्युक्त प्रयोजन को अग्रसर करने के लिए प्रत्येक राज्य के गृह विभाग को यह निदेश देना आवश्यक समझा गया है कि वे दोषमुक्ति के सभी आदेशों की जांच करें और प्रत्येक अभियोजन मामले की विफलता के कारणों को भी अभिलिखित करें । पुलिस और अभियोजन विभागों के वरिष्ठ

अधिकारियों की एक स्थायी समिति को उपर्युक्त दायित्व निहित किया जाना चाहिए । उपर्युक्त समिति के द्वारा किया गया विचार अन्वेषण और/या अभियोजन या दोनों के दौरान कारित की गई त्रुटियों को दूर करने के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए । प्रत्येक राज्य सरकार का गृह विभाग उपर्युक्त विचारणा से निकाले गए पाठ्यक्रम विषयवस्तु को कनिष्ठ अन्वेषण/अभियोजन अधिकारियों के लिए अपने विद्यमान प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में इसे सम्मिलित करेगा । इसमें वरिष्ठ अन्वेषण/अभियोजन अधिकारियों के लिए रिफ्रेशर्स प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पाठ्यक्रमों का विषय-वस्तु भी गठित करेगा । अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को तैयार करने के लिए उपर्युक्त दायित्व ऊपर निर्दिष्ट किए गए वरिष्ठ अधिकारियों की किसी समिति में निहित किया जाना चाहिए । वर्तमान जैसे निर्णयों में (मामले के अन्वेषण/अभियोजन में 10 प्रमुख लोपों से अधिक को दर्शातें) और इसी प्रकार के अन्य निर्णयों में उल्लिखित किए गए प्रमुख चूकों को भी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जोड़ा जाना चाहिए । पाठ्यक्रम विषयवस्तु का वार्षिक तौर पर उपर्युक्त समिति द्वारा उन्हें प्राप्त ताजा जानकारियों के आधार पर पुनर्विलोकन किया जाएगा जिसमें नीचे उद्‌भूत हुए अन्वेषण के वैज्ञानिक तरीकों, न्यायालयों के निर्णयों और विफल हुए अभियोजन मामलों में असफलताओं की जांच करते समय स्थायी समिति द्वारा किए गए अनुभवों के आधार पर भी पाठ्यक्रम का पुनर्विलोकन किया जाएगा । हम इसके अतिरिक्त निदेश देते हैं कि उपर्युक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम छह माह के भीतर किए जाएं । यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे व्यक्ति जो अन्वेषण/अभियोजन से संबंधित संवेदनशील विषयों पर चर्चा कर रहे हैं वे पूर्णतया उनका निपटारा करने के लिए प्रशिक्षित हों । इसके पश्चात् यदि उनके द्वारा कोई चूक कारित की जाती है, तब वे किसी अनभिज्ञता का बहाना नहीं ले सकते, जब वे अपनी चूकों के लिए विभागीय कार्रवाई भोगने के लिए दायी बनाए जाएंगे ।

21. किसी दांडिक मामले में दोषमुक्ति किए जाने पर, ऐसी दोषमुक्ति के लिए जिम्मेदार संबंधित अन्वेषण/अभियोजन अधिकारी या अधिकारियों की आवश्यक रूप से शनाख्त की जानी चाहिए । प्रत्येक मामले में आवश्यक रूप से एक निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना चाहिए कि क्या चूक अनभिज्ञता के कारण थी या उसके लिए दोष दिया जा सकता है । त्रुटि करने वाले प्रत्येक अधिकारी को यथोचित विभागीय कार्रवाई द्वारा जब कभी ऐसी आवश्यकता हो उसकी चूक के परिणामों को भोगना होगा ।

विषय की गंभीरता पर विचार करते हुए संबंधित अधिकारी को विशुद्ध रूप से उसी दोषिता के आधार पर स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से अन्वेषण दायित्वों से हटा लिया जाना होगा । हम कुछ अपरिहार्य अध्युपायों के अपनाए जाने की अपेक्षा को भी आवश्यक रूप से महसूस करते हैं जो दांडिक मुकदमेबाजी के दोनों पक्षकारों द्वारा गलत तौर पर भोगी जाती है और ऐसे अपरिहार्य अध्युपायों से उनमें कमी आ सके । तदनुसार हम यह निदेश देते हैं कि प्रत्येक राज्य सरकार का गृह विभाग सभी त्रुटि करने वाले अन्वेषण/अभियोजन अधिकारी या अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए एक प्रक्रिया बनाए । शनाख्त किए गए ऐसे सभी त्रुटि करने वाले अधिकारी/अधिकारियों जोकि अपनी अपेक्षा या उद्देश्यपूर्ण चूकों के कारण किसी अभियोजन मामले की विफलता के लिए जिम्मेदार हैं, को विभागीय कार्रवाई को भोगना होगा । उपर्युक्त बनाया गया तंत्र अन्वेषक और अभियोजन कर्तव्यों के पालन में गंभीरता के तत्व को डालेगा, और यह सुनिश्चित करेगा कि अन्वेषण और अभियोजन प्रयोजनपूर्ण और निश्चायक हो । वर्तमान निदेश को छह माह के भीतर प्रभावी किया जाना चाहिए ।

22. इस न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा वर्तमान निर्णय की एक प्रति एक सप्ताह के भीतर सभी राज्य सरकारों और संघ राजक्षेत्रों के गृह सचिवों को भेजी जानी चाहिए । सभी संबंधित गृह सचिव ऊपर अभिलिखित किए गए निदेशों के पालन को सुनिश्चित करेंगे । उपर्युक्त निदेश के अनुपालन में किए गए कार्यों का अभिलेख भी बनाया जाएगा ।

23. हमें आशा और विश्वास है कि गुजरात राज्य का गृह विभाग वर्तमान मामले में त्रुटि करने वाले अधिकारियों की शनाख्त करेगा और उनके विरुद्ध यथोचित विभागीय कार्रवाई करेगा जोकि विधि के अनुसार यथोचित विचार की जाए ।

24. तदनुसार वर्तमान दांडिक अपील का निपटारा किया जाता है ।

अपील का तदनुसार निपटारा किया गया ।

अनू.

[2014] 3 उम. नि. प. 358

विनोद कुमार

बनाम

केरल राज्य

4 अप्रैल, 2014

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 और 90 – बलात्संग – सम्मति – विवाहित अपीलार्थी द्वारा अभियोक्त्री के साथ उसकी सम्मति से संबंध बनाना – सम्मति का उचित पाया जाना – अभियोक्त्री को यह मालूम था कि अपीलार्थी पहले से ही विवाहित था किन्तु अभियोक्त्री के धर्म के अनुसार बहु-पत्नीक संबंध कोई अभिशाप नहीं था और अपीलार्थी द्वारा उसे विलुब्ध भी नहीं किया गया था तथा वह अपीलार्थी के साथ घर-परिवार चलाने को इच्छुक थी, इस आधार पर बलात्संग के अपराध के लिए निचले दोनों न्यायालयों द्वारा की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि अनुचित होगी ।

इस मामले में, अपीलार्थी के विरुद्ध यह अभिकथन किया गया है कि उसने अपने विवाहित होने के तथ्य को छिपाकर अभियोक्त्री के साथ प्रेम संबंध बढ़ाए और अभियोक्त्री की विधिमान्य सम्मति के बिना उसके साथ मैथुन किया । विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को बलात्संग का दोषी पाया गया, साथ ही उसे दंड संहिता की धारा 417 और 419 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया । अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने भी अपीलार्थी को बलात्संग का दोषी पाया किन्तु दंड संहिता की धारा 417 और 419 के अधीन की गई दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के आदेशों को अपास्त किया और अपीलार्थी को दोषमुक्त करते हुए अपील मंजूर की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय इस तथ्य से पूर्णतया जागरूक, ग्रहणशील, सतर्क और प्रसंगबद्ध है कि अपीलार्थी को दोषी पाया गया है और उसे

अभियोक्त्री के साथ किए गए बलात्संग के धिक्कार्य अपराध के लिए निचले दोनों न्यायालयों द्वारा दंडित किया गया है । तथापि, हमारा यह विचार है कि निचले न्यायालयों के निर्णय से यह प्रकट होता है कि विधि का गलत अर्थ लगाया गया है और उसका गलत प्रयोग किया गया है और यह भी प्रकट होता है कि साक्षियों की परीक्षा द्वारा सामने आए तथ्यों का भी गलत अर्थ लगाया गया है । पहली बात यह है कि अभियोक्त्री स्नातक है और वह दुर्बल बुद्धि की आसानी से धोखा खाने वाली महिला नहीं है क्योंकि उसके आचरण से यह स्पष्ट है कि उसने घटना वाले दिन अर्थात् 9 अप्रैल, 2000 को भी कालेज में अपनी परीक्षा सफलतापूर्वक दी थी । वास्तव में उसने विकसित और असाधारण स्तर की मानसिक प्रौढ़ता दर्शाई है । न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि वह इस बात से अवगत थी कि विधिक विवाह नहीं हो सका है, इसीलिए थोड़े समय के लिए उसकी यह धारणा बन गई थी कि विवाह का करार निष्पादित किया जाना चाहिए । दूसरी बात यह कि अभि. सा. 4 और अभि. सा. 5 के परिसाक्ष्य से स्वतंत्रतापूर्वक यह उपदर्शित होता है कि अभियोक्त्री को ज्ञानी और निष्पक्ष व्यक्तियों द्वारा यह बताया गया था कि उन दोनों के बीच कोई भी विधिक रूप से प्रभावशाली विवाह नहीं हुआ है । तीसरी बात यह है कि इस परिस्थिति में इस तथ्य से युक्तियुक्त रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतः अभियोक्त्री के कहने पर अपीलार्थी ने किसी इमाम से परामर्श किया था जिसे दोनों पक्षकार जानते थे, इमाम ने अपीलार्थी के इस्लाम धर्म स्वीकार करने का अनुमोदन नहीं किया है, जिसका स्पष्ट कारण अपीलार्थी का पहले से विवाहित होना और इस संदर्भ में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि है । प्रत्यक्षतः, यदि उस समय वह अविवाहित होता तब इमाम के लिए धर्म परिवर्तन के प्रति अनिच्छा प्रकट करने का कोई ठोस कारण नहीं होता । बल्कि सामान्य अनुक्रम में अपीलार्थी का धर्म परिवर्तन के लिए स्वागत किया जाता तथा उसकी भावी पत्नी के परिवार द्वारा भी अपीलार्थी का स्वागत किया जाता और यह तो पूर्णतया असंभावी होता कि भावी पत्नी के परिवार द्वारा कोई विरोध किया जाता । यह ध्यान देने योग्य है कि अभियोजन पक्ष ने इमाम की परीक्षा नहीं कराई है । चौथी बात यह है कि यदि अपीलार्थी अविवाहित होता तब विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अधीन अपीलार्थी और अभियोक्त्री को विवाह करने के लिए किसी प्रकार की कोई भी बाधा उत्पन्न न होती । पांचवीं बात यह है कि हम अभियोक्त्री के इस कथन को अनदेखा नहीं कर सकते

हैं कि उसके धर्म में पति बहुविवाह कर सकता है ; बाह्य गणना से यह उपदर्शित होता है कि अभियोक्त्री इस बात से अवगत थी कि अपीलार्थी पहले से विवाहित है, फिर भी वह अपीलार्थी के साथ वैवाहिक संबंध रखने के लिए इच्छुक थी, यद्यपि उसे यह आशा थी कि अपीलार्थी अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है । छठी बात यह है कि अभियोजन पक्ष को यह पता लगाना चाहिए था कि अभियोक्त्री के चाचा ने किस प्रकार अपीलार्थी के विवाह का फोटो प्राप्त किया था, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा में यह कहा हो कि उसने अभियोक्त्री को उस समय फोटो दिखा दिया था जब अभियोक्त्री ने अपीलार्थी को आत्महत्या की धमकी देकर उसके साथ विवाह करने के लिए विवश किया था । अपीलार्थी ने यह भी कथन किया है कि यह फोटो फातिमा को इस आधार पर दिया गया था कि स्वयं अभियोक्त्री ने फातिमा को अपनी अंतरंग सहेली बताया था । इसके अतिरिक्त पता नहीं किन कारणों से अभियोजन पक्ष ने इन साक्षियों को प्रस्तुत नहीं किया है, जिससे केवल यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि उन्हें न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता तो अपीलार्थी के विवाहित होने की बात प्रकट हो जाती । अभियोजन पक्ष का कार्य सच्चाई को सामने लाना है और दोषी को पकड़ना है न कि निर्दोष को दंडित कराना । किंतु हमें खेद है कि इस महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को पूरा नहीं किया गया है । वास्तव में राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी द्वारा फातिमा को (न्यायालय में) प्रस्तुत किया जा सकता था, यह दलील पूर्णतया खारिज किए जाने के लिए ही दी गई है । न्यायालय समुचित रूप से ऐसी दलील से यह समझ सकता है कि यदि फातिमा की परीक्षा कराई जाती तो वह अपीलार्थी के पक्ष में साक्ष्य दे सकती थी । सातवीं बात यह है कि अभियोक्त्री द्वारा इस पर संविवाद नहीं किया गया है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री के साथ गृहस्थ जीवन बिताने के लिए आवश्यक सभी प्रबंध कर लिए थे । वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को उसके साथ संभोग करने और यह विश्वास करने के लिए बहकाया था कि वे विधिक रूप से विवाहित हैं ; अभियोक्त्री इन सब बातों का अन्यथा अर्थ भी समझ सकती थी । उद्भूत तथ्य इस प्रकार हैं कि दम्पत्ति एक दूसरे के साथ सम्मोहित हो गए थे और परिस्थितियों को देखते हुए विवाह जैसे संबंधों के साथ जीवन बिताना चाहते थे । आठवीं बात यह है कि जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया गया है, अभियोजन पक्ष द्वारा साक्षी की परीक्षा की जानी चाहिए थी क्योंकि

वह महत्वपूर्ण साक्षी थी और वह अभियोक्त्री के मन की बात बता सकती थी । अंत में कैनी राजन वाले मामले में विधि को सूक्ष्मता के साथ स्पष्ट किया गया है । जब न्यायालय सम्मति दिए जाने और न दिए जाने के मामले पर विचार करे तब उसका यह कर्तव्य है कि वह अपना यह समाधान करे कि दोनों पक्षकारों ने आवश्यक संघटक पूरे किए हैं या नहीं ; वर्तमान मामले में अभियोक्त्री को यह विश्वास दिलाया गया है या नहीं कि अपीलार्थी के साथ जो उसका विवाह हुआ है वह सम्यक् और विधिक रूप से हुआ है । यह पर्याप्त नहीं है कि अभियोक्त्री अपीलार्थी द्वारा बहकाए जाने के बिना तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से स्वयं सहमत हो गई थी । ऐसे व्यक्ति को दोषसिद्ध करना संभव नहीं है जिसने कोई भी वचन न दिया हो न ही उसने तथ्यों या विधि की कोई भी गलती की हो या उसने ऐसा कुछ प्रकट किया हो जिससे अन्य पक्षकार उत्प्रेरित होकर कोई कृत्य कर दे । ऐसे भी मामले हैं जिनमें एक पक्षकार अपने मतिभ्रम के आधार पर ऐसा विश्वास पैदा कर लेता है जिससे अन्य पक्षकार का कोई लेना-देना नहीं होता है । यदि अन्य पक्षकार सही पृष्ठभूमि दर्शाने में सत्यनिष्ठा से काम लेता है तब स्पष्ट रूप से ऐसे पक्षकार को दोषी नहीं कहा जा सकता है । न्यायालय को इस पर कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान मामले की रूपरेखा से स्वयं यह दर्शित होता है कि अभियोक्त्री को यह मालूम था कि अपीलार्थी पहले से विवाहित है किंतु उसके (अभियोक्त्री के) धर्म के अनुसार उसके लिए बहु-पत्नीक संबंध कोई अभिशाप नहीं था इसलिए अभियोक्त्री अपीलार्थी के साथ घर-परिवार चलाने के लिए इच्छुक थी । इस आधार पर, संदेह के परे इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है कि अपीलार्थी बलात्संग के अपराध का दोषी है ; न ही ऐसा सहमतिक लैंगिक संबंध होने का कोई कारण दिखाई पड़ता है जो अभियोक्त्री के चाचा द्वारा हस्तक्षेप किए जाने से अचानक समाप्त हो गया । वास्वत में, बलात्संग एक धिक्कार्य कृत्य है और प्रत्येक अपराधी को तत्परतापूर्वक, पृथक्तः और दृढ़तापूर्वक दंडित किया जाना चाहिए । तथापि, यह केवल तभी संभव है जब दोष युक्तियुक्त संदेह के परे साबित कर दिया गया हो । हमारे विचार से इस मामले में अभियोक्त्री को विलुब्ध नहीं किया गया है ; बस बात इतनी है कि दो व्यक्तियों को एक दूसरे से प्रेम हो गया, अपने यौवन में वे इतने लीन हो गए थे कि उनके लिए बहु-पत्नीक संबंध में कोई बुराई दिखाई नहीं दे रही थी । अपीलार्थी निर्दोष नहीं है क्योंकि उसने वैवाहिक संकल्पों और अपने पैतृक कर्तव्यों तथा जिम्मेदारियों का अतिक्रमण करके चाहे-अनचाहे

अभियोक्त्री के साथ संबंध बनाए थे । यदि उसने ऐसे अपराध के लिए कारावास भोगा है जिसका वह अपराधी नहीं है, तब उसे यह अहसास करना चाहिए कि उसने इसके बदले में प्रतिफल भी तो प्राप्त किया था । अब केवल यह आशा की जाती है कि उसकी पत्नी चित्रलेखा को चाहिए कि वह धैर्य और सहनशीलता से काम लेते हुए अपीलार्थी को क्षमा करे ताकि उसका परिवार पुनः एक साथ हो सके और उसे फिर से सुख मिल सके और अभियोक्त्री ने भी खुले तौर पर इस बात को स्वीकार किया है । (पैरा 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 9 एस. सी. सी. 113 : **कैनी राजन** बनाम **केरल राज्य** ;	8, 9
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 88 : **दिलीप सिंह** बनाम **बिहार राज्य** ;	9
[1976]	(1976) 4 एस. सी. सी. 233 : **रबीन्द्र कुमार डे** बनाम **उड़ीसा राज्य** ।	6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 821.

2006 की दांडिक अपील सं. 1481 में केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम के तारीख 17 जुलाई, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री बसंत आर (वरिष्ठ अधिवक्ता), राघेन्त बसंत, अदित एस. पुजारी, कार्तिक अशोक और हरदीप सिंह (सेन्तिल जगदीशन की ओर से)

प्रत्यर्थी की ओर से — सुश्री बीना माधवन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन ने दिया ।

न्या. सेन – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. इस अपील में हम भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 376 के अधीन अपीलार्थी की समवर्ती दोषसिद्धि पर विचार कर रहे हैं, यद्यपि दोनों न्यायालयों द्वारा निकाले गए

निष्कर्ष सारभूत रूप से भिन्न हैं । उच्च न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 417 और 419 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त की है जबकि अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, तिरुवनंतपुरम ने अपीलार्थी को सात वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भोगने और 25,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने, जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में अपीलार्थी के सात वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कम करके चार वर्ष किया है किंतु 25,000/- रुपए के जुर्माने को कायम रखा है जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अपीलार्थी के तीन वर्ष के कठोर कारावास को कम करके छह मास का कठोर कारावास किया है । आक्षेपित निर्णय के आरंभ में विद्वान् न्यायाधीश ने स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि टेलीफोन पर बातचीत आरंभ होने से अपीलार्थी और अभियोक्त्री (अभि. सा. 2) के बीच मित्रता घनिष्ठ संबंधों में बदल गई और तत्पश्चात् प्रेम में परिवर्तित हो गई, परिणामस्वरूप वे फरार हो गए । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बावजूद, विद्वान् न्यायाधीश ने अभि. सा. 2 को आहत के रूप में नामित किया है, और हमें यह प्रतीत होता है कि यह निष्कर्ष तथ्यों की दृष्टि से असंगत है जिससे भ्रांति पैदा होती है और यह भी प्रतीत होता है कि विधि का गलत प्रयोग किया गया है ।

3. जहां तक तथ्यों का संबंध है, यह असंविवादित है कि सुसंगत समय पर अभि. सा. 2 की आयु 22 वर्ष थी और वह डिग्री कालेज में अध्ययन कर रही थी और वह दुर्घटना वाले दिन अर्थात् तारीख 19 अप्रैल, 2000 को सफलतापूर्वक अपनी अंतिम परीक्षा में बैठी थी । इसके पश्चात् जब वह कालेज से घर वापस नहीं आई तो उसके पिता ने उसे तलाश किया लेकिन उसका कोई पता नहीं चल सका । तद्नुसार, अगले दिन अर्थात् तारीख 20 अप्रैल, 2000 को उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-1) दर्ज कराई । यह पता चलता है कि अभियोक्त्री (अभि. सा. 2) का विवाह तारीख 11 मार्च, 2000 को हुआ था और उसके अभिसाक्ष्य देने के समय पर वह बच्चों की मां भी बन चुकी थी । इस पर भी कोई विवाद नहीं है कि उप रजिस्ट्रार कार्यालय, कजाकुट्टम (एस. आर. ओ.) में एक दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत किया गया था जिसका कई प्रकार से नामकरण किया गया है और उसे 'विवाह रजिस्ट्रीकरण' भी कहा गया है । अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि वह विश्वविद्यालय के एक कालेज में अभि. सा. 2 से मिला था और कुछ मुलाकातों और एक दूसरे को और अधिक जानने के

पश्चात् अभियोक्त्री ने अपीलार्थी को यह धमकी दी कि यदि वह उससे विवाह नहीं करेगा तो वह आत्महत्या कर लेगी ; इस पर उसने अभियोक्त्री को तुरंत यह बताया कि वह पहले ही विवाहित है और उसके दो बच्चे हैं और अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को अपने विवाह के फोटो भी दिए जो अभियोक्त्री ने अपनी सहेली फातिमा के पास रखे हुए थे, अभियोक्त्री ने अपीलार्थी से उसकी पत्नी को तलाक देने को कहा ; अभियोक्त्री ने अपीलार्थी से कहा कि उसका (अभियोक्त्री का) धर्म पुरुष को चार विवाह की अनुमति देता है इसलिए अपीलार्थी को चाहिए कि वह कम से कम एक दस्तावेज इस बाबत सबूत के लिए तैयार करा ले कि अपीलार्थी का विवाह अभियोक्त्री के साथ हुआ है । अपीलार्थी द्वारा यह दलील दी गई है कि उसने तारीख 19 अप्रैल, 2000 के पश्चात् ही अभियोक्त्री के साथ मैथुन किया था और इस पर दोनों की सम्मति थी । विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 375 के चौथे स्पष्टीकरण का अवलंब लिया है और इसके पश्चात् अपीलार्थी को अन्य बातों के साथ बलात्संग कारित किए जाने का दोषी अभिनिर्धारित किया है ।

4. अभि. सा. 2 के साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि किसी भी प्रक्रम पर अपीलार्थी की ओर से कोई भी दबाव नहीं डाला गया था और उस समय पर भी कोई दबाव नहीं डाला गया था जब अभियोक्त्री इसके पूर्व एक अवसर पर अपीलार्थी के साथ एक दिन के लिए पोनमुडी घूमने गई थी और महत्वपूर्ण बात यह है कि वहां पर अपीलार्थी ने कोई भी कमरा किराए पर नहीं लिया था और उन्होंने केरल पर्यटन विकास निगम (के. टी. डी. सी.) पोनमुडी में भोजन किया था । अभि. सा. 2 ने यह पक्षकथन किया है कि अपीलार्थी ने उसे अपने पहले से विवाहित होने का तथ्य नहीं बताया था और इसके प्रतिकूल अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को यह धमकी दी थी कि यदि उसने अपीलार्थी के साथ विवाह नहीं किया तो वह आत्महत्या कर लेगा । अभियोक्त्री ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी ने उससे यह भी कहा था कि "धर्म परिवर्तन के पश्चात् विवाह किया जा सकता है" किंतु इमाम से पूछताछ किए जाने पर इमाम ने अपीलार्थी को यह बताया कि मात्र विवाह करने के लिए धर्म परिवर्तन संभव नहीं है, धर्म परिवर्तन केवल रजिस्ट्रीकृत विवाह के पश्चात् ही किया जा सकता है । अभियोक्त्री ने यह भी साक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी के जोर देने पर वह तारीख 19 अप्रैल, 2000 को प्रातःकाल में उसके साथ रजिस्ट्रार के कार्यालय में गई जहां

उसने एक कागज पर मारुति वैन में बैठकर हस्ताक्षर किए थे जिसे अपीलार्थी का ड्राइवर चला रहा था जिसमें ड्राइवर की पत्नी और बच्चा भी बैठे हुए थे, इसके पश्चात् अभियोक्त्री को उसके कालेज पर उतार दिया गया जहां उसने अपनी अंतिम परीक्षा सफलतापूर्वक दी थी । परीक्षा देने के पश्चात् वह इन सभी व्यक्तियों के साथ कटेला गई जहां अपीलार्थी ने एक सुसज्जित मकान किराए पर ले रखा था ; अगले दिन वह चवरा चली गई जहां अपीलार्थी और अभियोक्त्री मेला लॉज के कमरा नं. 106 में ठहरे । वहां से वे कोयम्बटूर चले गए और इसके पश्चात् ऊटी गए जहां वे दो दिन अर्थात् 22 और 23 अप्रैल, 2000 को ठहरे, इसके पश्चात् वे नीलागिरि स्थित अपीलार्थी के नातेदारों के यहां तीन दिन तक ठहरे । अभियोक्त्री ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने अपीलार्थी के साथ इन सभी स्थानों पर मैथुन किया था । इसके पश्चात् अचानक अभियोक्त्री के चाचा अब्दुल रशीद और उसके ऑटोरिक्शा चालक ने उन्हें उस समय देख लिया जब वे कुछ खरीदारी करने बाजार गए थे । उस समय उसके चाचा अब्दुल रशीद ने अपीलार्थी के विवाह का फोटो निकाला, अपीलार्थी और अभियोक्त्री के चाचा के बीच कहा-सुनी हुई और अपीलार्थी मारुति वैन से चला गया । अभियोक्त्री ने यह साक्ष्य दिया है कि जब तक मेरे चाचा ने अपीलार्थी के विवाह का फोटो मुझे नहीं दिखाया था तब तक मुझे यह पता नहीं चला था कि अपीलार्थी पहले से विवाहित है, अपीलार्थी ने मुझे कभी भी यह नहीं बताया था कि वह विवाहित है । यदि मुझे इसका पता पहले चल जाता तो मैं अपीलार्थी के साथ यह सब नहीं करती । मैंने यह सोचकर कि मैं अपीलार्थी की विधिक रूप से विवाहित पत्नी हूं, उसके साथ संभोग कर लिया करती थी । उसने यह साक्ष्य दिया है कि उसने अपनी सहेली फातिमा और भरोसे के लोगों को बताया था कि अपीलार्थी उससे फोन पर बात करता है और अभियोक्त्री ने यह भी बताया था कि वह अपीलार्थी के साथ फरार है और सुरक्षापूर्वक कटेला में रह रही है । जैसाकि पहले ही अभिलिखित किया गया है प्रतिरक्षा का यह पक्षकथन है कि अपीलार्थी के विवाह का फोटो अभियोक्त्री द्वारा फातिमा को तत्पश्चात् दे दिया गया था । यह महत्वपूर्ण है कि अभियोजन पक्ष ने फातिमा की परीक्षा नहीं की है और इसके बजाय राज्य के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निराधार दलील दी गई है कि अपीलार्थी द्वारा उसकी परीक्षा कराई जा सकती थी और कराई जानी चाहिए थी । अभियोक्त्री का यह कहना है कि यद्यपि उसने एक कागज पर हस्ताक्षर किए थे जो 50/- रुपए वाला स्टाम्प पेपर था और वह रजिस्ट्रार

के समक्ष पेश हुई थी लेकिन वह उस दस्तावेज की अंतर्वस्तु से अवगत नहीं थी । अभियोजन का यह पक्षकथन है कि अभि. सा. 2 ने जब आरंभ में ही अपनी अनिच्छा प्रकट की थी तभी उसे अपीलार्थी द्वारा विवाह रजिस्ट्रीकरण के लिए विवश किया गया था । इन परिस्थितियों में अभियोक्त्री को यह विश्वास हो गया कि वह अपीलार्थी की विधिक रूप से विवाहित पत्नी है जैसाकि पहले ही विचार किया गया है इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि अभियोक्त्री और अपीलार्थी के बीच शारीरिक संबंध थे । अभियोक्त्री ने यह साक्ष्य दिया है कि यदि उसे यह मालूम होता कि अभियुक्त पहले से विवाहित है, तब वह अपीलार्थी के साथ ऐसा संबंध नहीं रखती ।

5. स्पष्टतः, अभियोक्त्री (अभि. सा. 2) का कथन इस मामले का मूल आधार है । उसके अनुसार अपीलार्थी ने स्वयं को बी. सी. एम. कालेज, कोट्टयम का छात्र बताया था और इसके पश्चात् प्रतिदिन टेलीफोन पर आपस में बातचीत होती थी, वे एक-दूसरे से मुलाकात करने के लिए भी सहमत हो गए । तारीख 17 जनवरी, 2000 को वह अपीलार्थी के साथ पोनमुडी गई जहां अपीलार्थी ने अभियोक्त्री के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा और वे एक दूसरे के साथ 11.00 बजे पूर्वाह्न से 4.30 बजे अपराह्न तक रहे । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है अभियोक्त्री ने अन्य बातों के साथ यह कथन किया है कि अपीलार्थी ने मुझे यह बताया था कि धर्म परिवर्तन के पश्चात् विवाह किया जा सकता है और इसके बारे में जानकारी लेने के लिए वह पलायम मस्जिद के इमाम के पास गया जिन्होंने उसे यह बताया कि मात्र विवाह करने के लिए धर्म परिवर्तन संभव नहीं है, इसीलिए धर्म परिवर्तन केवल रजिस्ट्रीकृत विवाह के पश्चात् ही संभव है । इस प्रकार मैं विवाह के लिए सहमत हो गई । अपीलार्थी ने मुझे यह बताया था कि विवाह 19 तारीख को रजिस्ट्रीकृत किया जाएगा । हमारी राय में यह कथन वास्तव में अनुश्रुत है । हम इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते हैं कि अभियोक्त्री एक स्नातक है जो उस दिन परीक्षा में बैठने के लिए प्रभावशाली रूप से सक्षम, जिम्मेदार, समाधानप्रद और अनुशासनबद्ध थी, प्रातःकाल में वह विवाह-करार के रजिस्ट्रीकरण के लिए उप रजिस्ट्रार के समक्ष पेश हुई थी, इसके पश्चात् वह वहां से चली गई और फरार हो गई ।

6. एक अन्य महत्वपूर्ण संघटक उप रजिस्ट्रार, कजाकुट्टम (अभि. सा. 4) ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने तारीख 19 अप्रैल, 2000

को एक विवाह करार का रजिस्ट्रीकरण किया था जो अपीलार्थी और अभियोक्त्री के बीच निष्पादित किया गया था और वह दस्तावेज मोहन चंद्रन नायर (अभि. सा. 5) अर्थात् विक्रय-विलेख लेखक (कातिब) के हाथ से लिखा गया था । अपनी प्रतिपरीक्षा में अभि. सा. 4 ने यह कथन किया है कि उसने पति-पत्नी को यह बता दिया था कि उक्त करार के रजिस्ट्रीकरण किए जाने पर विवाह पूर्ण नहीं हो जाएगा जो उसकी राय में पति-पत्नी द्वारा बिना किसी संकोच और स्वतंत्र सम्मति के साथ निष्पादित किया गया था । जहां तक अभि. सा. 5 का संबंध है हमने इस साक्षी द्वारा उसकी मुख्य परीक्षा में दिए गए कथनों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है, एक भी कथन अभियोजन पक्षकथन के प्रतिकूल प्रतीत नहीं होता है, फिर भी उसे अकारण ही पक्षद्रोही घोषित किया गया है । यह दोहराना उचित होगा कि **रबीन्द्र कुमार डे** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि "..... मात्र इस कारण से कि साक्षी प्रवाहपूर्ण बोलते समय सच बात कह जाता है जो अभियोजन पक्ष के प्रतिकूल और अभियुक्त के अनुकूल हो सकती है, किसी पक्षकार को उसके अपने साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने के लिए अनुज्ञात करने का विवेकाधिकार नहीं दिया जा सकता है । अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साक्षी उस पक्षकार के लिए जिसने उसे बुलाया है तब प्रतिकूल माना जा सकता है और उसकी प्रतिपरीक्षा तब की जा सकती है जब न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि वह साक्षी उस पक्षकार के प्रति पक्षद्रोही हो गया है जिसके लिए वह अभिसाक्ष्य दे रहा है या ऐसा प्रतीत होता हो कि साक्षी सच्चाई बताने के लिए इच्छुक नहीं है । साक्षी के आशय या उसके आचरण को सुनिश्चित करने के लिए संबद्ध न्यायाधीश को साक्षी के उस कथन पर विचार करना चाहिए जो उसने अन्वेषक अधिकारी या पूर्ववर्ती प्राधिकारी को इसके पूर्व दिया था ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या साक्षी के कथन से ऐसी कोई बात उपदर्शित होती है जो महत्वपूर्ण मुद्दों के संबंध में असंगत हो जबकि उसने इसके पूर्व पिछले प्राधिकारियों के समक्ष संगत कथन किए हों । तथापि, न्यायालय को साक्षी द्वारा पक्षद्रोही रूप में दिए गए कथन और पक्षद्रोही हुए बिना दिए गए कथन के बीच अंतर समझना चाहिए ।" हमें यह भी स्पष्ट हो गया है कि अभि. सा. 5 की प्रतिपरीक्षा किए जाने से अभियोजन पक्षकथन कमजोर हो गया है । प्रायः

---

[1] (1976) 4 एस. सी. सी. 233.

ऐसा होता है कि प्रतिपरीक्षक इस खतरे से अनजान होता है कि अधिक प्रश्न पूछने से जो उत्तर सामने आते हैं उनकी जानकारी प्रतिपरीक्षक को नहीं होती है और न ही वह यह अनुमान लगा सकता है कि प्रश्न के उत्तर में क्या बात सामने आ सकती है और इस प्रकार प्राप्त किए गए उत्तरों से प्रतिपरीक्षक के हित को हानि पहुंच सकती है । हमें यह प्रतीत होता है कि विवाह-करार की साक्षी अर्थात् समाज सेविका (जिसका नाम सासी है) के ब्यौरे उपलब्ध थे और अभियोक्त्री के मन की दशा को स्पष्ट करने के लिए सुसंगत साक्षी होने के नाते अभियोजन पक्ष द्वारा उसकी परीक्षा की जानी चाहिए थी । अभियोजन पक्ष के लिए इसका प्रशमन करने लिए अभि. सा. 5 की पुनः परीक्षा किए जाने पर यह सामने आया है कि उसके द्वारा तारीख 18 अप्रैल, 2000 को अर्थात् रजिस्ट्रीकरण की तारीख से एक दिन पूर्व अभि. सा. 5 द्वारा अभियोक्त्री को यह राय दी गई थी कि विवाह का दस्तावेज, विधिक विधिमान्यता और प्रभावकारिता होने पर भी विवाह को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है । हम इस बात पर बल दे रहे हैं कि अभि. सा. 5 का परिसाक्ष्य महत्वपूर्ण है क्योंकि इस साक्षी ने यह कथन किया है कि अभियोक्त्री, अपीलार्थी तथा समाज सेविका अर्थात् सासी ने तारीख 18 अप्रैल, 2000 को करार की भाषा तैयार करने के लिए अभि. सा. 5 को काम पर लगाया था और उसने अभियोक्त्री को यह बता दिया था कि रजिस्ट्रीकरण किए जाने से विवाह विधिक नहीं हो जाएगा ।

7. चित्रलेखा (अभि. सा. 12), अभियुक्त/अपीलार्थी की पत्नी है और उसका कथन अभियोजन पक्ष के लिए अत्यंत घातक है क्योंकि फरार होने के पूर्व, टेलीफोन पर बातचीत के दौरान उसने टेलीफोन करने वाले व्यक्ति से (अभियोक्त्री से) यह कहा था कि वह अपीलार्थी की पत्नी है और यह कि अभियोक्त्री ने इसके पश्चात् इस बातचीत के दौरान अभि. सा. 12 को अपना नाम बताया और कहा कि वह अपीलार्थी से सीधे बात करेगी । इस साक्षी को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है ; और तत्पश्चात् उसने यह सूचना दी है कि वह अपीलार्थी से अलग हो गई है और अब अपने पिता के घर पर रहती है । लोक अभियोजक द्वारा अभि. सा. 12 की प्रतिपरीक्षा किए जाने पर अपीलार्थी के प्रतिकूल कोई भी बात सामने नहीं आई है ।

8. **कैनी राजन** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में मेरे प्रिय भ्राता ने संक्षिप्त शब्दों में बलात्संग के अपराध के मूल संघटकों और मापदंडों को

---

[1] (2013) 9 एस. सी. सी. 113.

स्पष्ट किया है, जिसकी आगे और व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है :–

> "12. धारा 375 के अधीन 'बलात्संग' अभिव्यक्ति को परिभाषित किया गया है जिससे यह उपदर्शित होता है कि पहले खंड के अनुसार महिला स्वस्थचित्त होनी चाहिए, अतः सम्मति देने योग्य हो किंतु कृत्य उसकी इच्छा के विरुद्ध किया गया हो ; और दूसरे खंड के अनुसार उसकी सम्मति के बिना ; तीसरे, चौथे और पांचवें के अनुसार सम्मति तो दी गई हो किंतु सम्मति ऐसी न हो कि अपराधी को माफी मिल सके क्योंकि ऐसी सम्मति किसी व्यक्ति को, जिससे वह हितबद्ध है, मृत्यु या उपहति के भय में डालकर अभिप्राप्त की जाती है । 'उसकी इच्छा के विरुद्ध' अभिव्यक्ति का यह अर्थ है कि उस स्त्री के द्वारा विरोध किए जाने के बावजूद कृत्य किया गया है । 'सम्मति' का सही अर्थ तब लगाया जा सकता है जब यह मामले के साक्ष्य और संभाव्यताओं पर आधारित है । 'सम्मति' को किसी कारण से जानबूझकर किया गया कार्य भी कहा जाता है । 'सम्मति' उस व्यक्ति की सक्रिय इच्छा है जिसने उस कार्य के लिए अनुज्ञा दी थी जिस कार्य के लिए अब शिकायत की गई है । दंड संहिता की धारा 90 के अधीन 'सम्मति' अभिव्यक्ति को निर्दिष्ट किया गया है । यद्यपि धारा 90 में 'सम्मति' को परिभाषित नहीं किया गया है किन्तु इसका वर्णन अवश्य किया गया है कि किस कार्य को 'सम्मति' नहीं कहा जाएगा । धारा 375 के प्रयोजन के लिए 'सम्मति' के अधीन यह अपेक्षा की गई है कि 'सम्मति' स्वेच्छया सहभागिता है जोकि न केवल उसका कार्य के महत्व और नैतिक गुण के ज्ञान के आधार पर अपितु प्रतिरोध और सहमति के बीच विकल्प का पूर्ण रूप से प्रयोग करके अपनाई जाती है । 'सम्मति' दी गई है या नहीं, यह सभी सुसंगत परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक विचार करके ही सुनिश्चित किया जाना चाहिए ।"

9. हम इस तथ्य से पूर्णतया जागरूक, ग्रहणशील, सतर्क और प्रसंगबद्ध हैं कि अपीलार्थी को दोषी पाया गया है और उसे अभियोक्त्री के साथ किए गए बलात्संग के धिक्कार्य अपराध के लिए निचले दोनों न्यायालयों द्वारा दंडित किया गया है । तथापि, हमारा यह विचार है कि निचले न्यायालयों के निर्णय से यह प्रकट होता है कि विधि का गलत अर्थ

लगाया गया है और उसका गलत प्रयोग किया गया है और यह भी प्रकट होता है कि साक्षियों की परीक्षा द्वारा सामने आए तथ्यों का भी गलत अर्थ लगाया गया है । पहली बात यह है कि अभियोक्त्री स्नातक है और वह दुर्बल बुद्धि की आसानी से धोखा खाने वाली महिला नहीं हैं क्योंकि उसके आचरण से यह स्पष्ट है कि उसने घटना वाले दिन अर्थात् 9 अप्रैल, 2000 को भी कालेज में अपनी परीक्षा सफलतापूर्वक दी थी । वास्तव में उसने विकसित और असाधारण स्तर की मानसिक प्रौढ़ता दर्शाई है । हमारा यह समाधान हो गया है कि वह इस बात से अवगत थी कि विधिक विवाह नहीं हो सका है, इसीलिए थोड़े समय के लिए उसकी यह धारणा बन गई थी कि विवाह का करार निष्पादित किया जाना चाहिए । दूसरी बात यह कि अभि. सा. 4 और अभि. सा. 5 के परिसाक्ष्य से स्वतंत्रतापूर्वक यह उपदर्शित होता है कि अभियोक्त्री को ज्ञानी और निष्पक्ष व्यक्तियों द्वारा यह बताया गया था कि उन दोनों के बीच कोई भी विधिक रूप से प्रभावशाली विवाह नहीं हुआ है । तीसरी बात यह है कि इस परिस्थिति में इस तथ्य से युक्तियुक्त रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतः अभियोक्त्री के कहने पर अपीलार्थी ने किसी इमाम से परामर्श किया था जिसे दोनों पक्षकार जानते थे, इमाम ने अपीलार्थी के इस्लाम धर्म स्वीकार करने का अनुमोदन नहीं किया है, जिसका स्पष्ट कारण अपीलार्थी का पहले से विवाहित होना और इस संदर्भ में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि है । प्रत्यक्षतः, यदि उस समय वह अविवाहित होता तब इमाम के लिए धर्म परिवर्तन के प्रति अनिच्छा प्रकट करने का कोई ठोस कारण नहीं होता । बल्कि सामान्य अनुक्रम में अपीलार्थी का धर्म परिवर्तन के लिए स्वागत किया जाता तथा उसकी भावी पत्नी के परिवार द्वारा भी अपीलार्थी का स्वागत किया जाता और यह तो पूर्णतया असंभावी होता कि भावी पत्नी के परिवार द्वारा कोई विरोध किया जाता । यह ध्यान देने योग्य है कि अभियोजन पक्ष ने इमाम की परीक्षा नहीं कराई है । चौथी बात यह है कि यदि अपीलार्थी अविवाहित होता तब विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अधीन अपीलार्थी और अभियोक्त्री को विवाह करने के लिए किसी प्रकार की कोई भी बाधा उत्पन्न न होती । पांचवीं बात यह है कि हम अभियोक्त्री के इस कथन को अनदेखा नहीं कर सकते हैं कि उसके धर्म में पति बहुविवाह कर सकता है ; बाह्य गणना से यह उपदर्शित होता है कि अभियोक्त्री इस बात से अवगत थी कि अपीलार्थी पहले से विवाहित है, फिर भी वह अपीलार्थी के साथ वैवाहिक संबंध रखने के लिए इच्छुक थी,

यद्यपि उसे यह आशा थी कि अपीलार्थी अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है । छठी बात यह है कि अभियोजन पक्ष को यह पता लगाना चाहिए था कि अभियोक्त्री के चाचा ने किस प्रकार अपीलार्थी के विवाह का फोटो प्राप्त किया था, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा में यह कहा हो कि उसने अभियोक्त्री को उस समय फोटो दिखा दिया था जब अभियोक्त्री ने अपीलार्थी को आत्महत्या की धमकी देकर उसके साथ विवाह करने के लिए विवश किया था । अपीलार्थी ने यह भी कथन किया है कि यह फोटो फातिमा को इस आधार पर दिया गया था कि स्वयं अभियोक्त्री ने फातिमा को अपनी अंतरंग सहेली बताया था । इसके अतिरिक्त पता नहीं किन कारणों से अभियोजन पक्ष ने इन साक्षियों को प्रस्तुत नहीं किया है, जिससे केवल यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि उन्हें न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता तो अपीलार्थी के विवाहित होने की बात प्रकट हो जाती । अभियोजन पक्ष का कार्य सच्चाई को सामने लाना है और दोषी को पकड़ना है न कि निर्दोष को दंडित कराना । किंतु हमें खेद है कि इस महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को पूरा नहीं किया गया है । वास्तव में राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी द्वारा फातिमा को (न्यायालय में) प्रस्तुत किया जा सकता था, यह दलील पूर्णतया खारिज किए जाने के लिए ही दी गई है । न्यायालय समुचित रूप से ऐसी दलील से यह समझ सकता है कि यदि फातिमा की परीक्षा कराई जाती तो वह अपीलार्थी के पक्ष में साक्ष्य दे सकती थी । सातवीं बात यह है कि अभियोक्त्री द्वारा इस पर संविवाद नहीं किया गया है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री के साथ गृहस्थ जीवन बिताने के लिए आवश्यक सभी प्रबंध कर लिए थे । वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को उसके साथ संभोग करने और यह विश्वास करने के लिए बहकाया था कि वे विधिक रूप से विवाहित हैं ; अभियोक्त्री इन सब बातों का अन्यथा अर्थ भी समझ सकती थी । उद्भूत तथ्य इस प्रकार हैं कि दम्पत्ति एक दूसरे के साथ सम्मोहित हो गए थे और परिस्थितियों को देखते हुए विवाह जैसे संबंधों के साथ जीवन बिताना चाहते थे । आठवीं बात यह है कि जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया गया है, अभियोजन पक्ष द्वारा सासी की परीक्षा की जानी चाहिए थी क्योंकि वह महत्वपूर्ण साक्षी थी और वह अभियोक्त्री के मन की बात बता सकती थी । अंत में **कैनी राजन** (उपर्युक्त) वाले मामले में विधि को सूक्ष्मता के साथ स्पष्ट किया गया है । जब न्यायालय सम्मति दिए जाने और न दिए जाने के मामले पर विचार करे तब उसका

यह कर्तव्य है कि वह अपना यह समाधान करे कि दोनों पक्षकारों ने आवश्यक संघटक पूरे किए हैं या नहीं ; वर्तमान मामले में अभियोक्त्री को यह विश्वास दिलाया गया है या नहीं कि अपीलार्थी के साथ जो उसका विवाह हुआ है वह सम्यक् और विधिक रूप से हुआ है । यह पर्याप्त नहीं है कि अभियोक्त्री अपीलार्थी द्वारा बहकाए जाने के बिना तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से स्वयं सहमत हो गई थी । ऐसे व्यक्ति को दोषसिद्ध करना संभव नहीं है जिसने कोई भी वचन न दिया हो न ही उसने तथ्यों या विधि की कोई भी गलती की हो या उसने ऐसा कुछ प्रकट किया हो जिससे अन्य पक्षकार उत्प्रेरित होकर कोई कृत्य कर दे । ऐसे भी मामले हैं जिनमें एक पक्षकार अपने मतिभ्रम के आधार पर ऐसा विश्वास पैदा कर लेता है जिससे अन्य पक्षकार का कोई लेना-देना नहीं होता है । यदि अन्य पक्षकार सही पृष्ठभूमि दर्शाने में सत्यनिष्ठा से काम लेता है तब स्पष्ट रूप से ऐसे पक्षकार को दोषी नहीं कहा जा सकता है । **दिलीप सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले से लिया गया पैरा निम्न प्रकार है :–

> "19. दंड संहिता की धारा 90 के प्रथम भाग में उल्लिखित संघटक आहत के दृष्टिकोण से उपवर्णित हैं । धारा 90 के द्वितीय भाग के अंतर्गत समवर्ती उपबंध अभियुक्त के हित में अधिनियमित किए गए हैं । इसके अधीन यह अनुध्यात किया गया है कि अभियुक्त को भी ज्ञान हो या उसके पास विश्वास करने का यह कारण हो कि क्षति के भय या तथ्य के भ्रम के परिणामस्वरूप आहत द्वारा सम्मति दी गई है । इस प्रकार, इस धारा के द्वितीय भाग के अंतर्गत उस व्यक्ति के ज्ञान या उसके युक्तियुक्त विश्वास पर बल दिया गया है जिसने बनावटी सम्मति प्राप्त की है । दोनों भागों की अपेक्षाओं का संचयी रूप से समाधान किया जाना चाहिए । अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या सम्मति देने वाले व्यक्ति ने क्षति के भय या तथ्य के भ्रम के परिणामस्वरूप सम्मति दी है और न्यायालय का यह भी समाधान होना चाहिए कि कृत्य करने वाला व्यक्ति अर्थात् अभिकथित अपराधी इस बात से अवगत हो या उसके पास यह समझने का कारण होना चाहिए कि भय या भ्रम के बिना यह सम्मति नहीं दी जा सकती थी । धारा 90 का यही अभिप्राय है जिसमें नकारात्मक शब्दावली का प्रयोग किया गया है ।"

---

[1] (2005) 1 एस. सी. सी. 88.

10. हमें इस पर कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान मामले की रूपरेखा से स्वयं यह दर्शित होता है कि अभियोक्त्री को यह मालूम था कि अपीलार्थी पहले से विवाहित है किंतु उसके (अभियोक्त्री के) धर्म के अनुसार उसके लिए बहु-पत्नीक संबंध कोई अभिशाप नहीं था इसलिए अभियोक्त्री अपीलार्थी के साथ घर-परिवार चलाने के लिए इच्छुक थी । इस आधार पर, संदेह के परे इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है कि अपीलार्थी बलात्संग के अपराध का दोषी है ; न ही ऐसा सहमतिक लैंगिक संबंध होने का कोई कारण दिखाई पड़ता है जो अभियोक्त्री के चाचा द्वारा हस्तक्षेप किए जाने से अचानक समाप्त हो गया । वास्वत में, बलात्संग एक धिक्कार्य कृत्य है और प्रत्येक अपराधी को तत्परतापूर्वक, पृथक्तः और दृढ़तापूर्वक दंडित किया जाना चाहिए । तथापि, यह केवल तभी संभव है जब दोष युक्तियुक्त संदेह के परे साबित कर दिया गया हो । हमारे विचार से इस मामले में अभियोक्त्री को विलुब्ध नहीं किया गया है ; बस बात इतनी है कि दो व्यक्तियों को एक दूसरे से प्रेम हो गया, अपने यौवन में वे इतने लीन हो गए थे कि उनके लिए बहु-पत्नीक संबंध में कोई बुराई दिखाई नहीं दे रही थी ।

11. अपीलार्थी निर्दोष नहीं है क्योंकि उसने वैवाहिक संकल्पों और अपने पैतृक कर्तव्यों तथा जिम्मेदारियों का अतिक्रमण करके चाहे-अनचाहे अभियोक्त्री के साथ संबंध बनाए थे । यदि उसने ऐसे अपराध के लिए कारावास भोगा है जिसका वह अपराधी नहीं है, तब उसे यह अहसास करना चाहिए कि उसने इसके बदले में प्रतिफल भी तो प्राप्त किया था । अब केवल यह आशा की जाती है कि उसकी पत्नी चित्रलेखा को चाहिए कि वह धैर्य और सहनशीलता से काम लेते हुए अपीलार्थी को क्षमा करे ताकि उसका परिवार पुनः एक साथ हो सके और उसे फिर से सुख मिल सके और अभियोक्त्री ने भी खुले तौर पर इस बात को स्वीकार किया है ।

12. हम इन परिस्थितियों के आधार पर अपील मंजूर करते हैं । हम अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त करते हैं और यह निदेश देते हैं कि उसे तत्काल उन्मुक्त किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

———

[2014] 3 उम. नि. प. 374

राजस्थान राज्य

बनाम

मनोज कुमार

11 अप्रैल, 2014

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 304 और 97 – हत्या – शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा अभियुक्त के भूखंड पर कब्जे किए जाने की आशंका – प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए अभियुक्त द्वारा गोली चलाना – अधिकार का अतिक्रमण – चूंकि अपीलार्थी ने मृतक की मृत्यु कारित करने के आशय से नहीं अपितु भूखंड की रक्षा के लिए गोली चलाई थी और उसमें प्रतिशोध की कोई भावना नहीं थी, किन्तु आवश्यकता से अधिक क्षति कारित करने के कारण वह धारा 304 भाग-I के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 304 और 34 – हत्या – सामान्य आशय – धारा 34 केवल वहां लागू होगी जहां सामान्य आशय को अग्रसर करने में अनेक व्यक्तियों द्वारा आपराधिक कार्य किया गया हो, सह-अभियुक्त केवल मुख्य अभियुक्त के साथ कब्जे के अधिकार की प्रतिरक्षा के लिए गए थे, अतः उनकी दोषसिद्धि धारा 34 के अधीन नहीं की जा सकती ।

इस मामले में, तीन अभियुक्त हैं अर्थात् राजू **उर्फ** राज कुमार, हेमंत और मनोज कुमार । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त राज कुमार को दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25/27 के अधीन और अभियुक्त हेमंत और मनोज को केवल दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया है । अभियुक्तों द्वारा अपील फाइल किए जाने पर उच्च न्यायालय ने अभियुक्त राज कुमार की दोषसिद्धि को धारा 302/34 से धारा 304 भाग-I में परिवर्तित कर दिया और अभियुक्त हेमंत और मनोज को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । राज्य ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक अपील अभियुक्त मनोज की दोषमुक्ति के विरुद्ध और दूसरी अपील राज कुमार और हेमंत के विरुद्ध फाइल की है । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हुए राज्य द्वारा

फाइल की गई दोनों अपीलें खारिज कर दीं । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अभिवाक् अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर उद्भूत हुआ है । जहां तक सबूत के भार का संबंध है, हमारा यह निष्कर्ष है कि अधिसंभाव्यता की प्रबलता के सिद्धांत को कायम रखने के लिए प्रत्यक्ष और दस्तावेजी साक्ष्य है । यह नहीं कहा जा सकता है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर यह अभिवाक् त्यक्त किया जा सके । इस प्रकार, उपर्युक्त दलील अस्वीकार्य होने के कारण एतद्द्वारा खारिज की जाती है । राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि जब अभियुक्तों ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया था और मृतक की मृत्यु कारित की थी तब ऐसी स्थिति में उन सभी को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया जाना चाहिए था । इस संबंध में, इसके पूर्व कि वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करें, हम कतिपय निर्णयज विधि निर्दिष्ट कर रहे हैं । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि ऐसे अधिकार का प्रयोग करने से दुष्चरित्र व्यक्ति अपराध करने से न केवल रुक सकते हैं बल्कि इससे स्वतंत्र नागरिक में अपने अधिकार का सही प्रयोग करने की भावना भी पैदा होती है क्योंकि संकट से बचकर भाग जाने से अधिक अपमानजनक कोई कार्य नहीं है । यदि आवेग की तीव्रता में वह सुनिश्चित और सटीक बल से अधिक बल का प्रयोग कर लेता है तब ऐसी स्थिति में उसे विधि के अधीन छूट मिल सकती है । एक मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का पूर्णतया उचित प्रयोग करने के लिए यह साबित किया जाना चाहिए कि प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार अभियुक्त के पक्ष में था और इस अधिकार का प्रयोग करने से ही मृत्यु कारित हुई है और यदि न्यायालय को उक्त अभिवाक् खारिज करना होता तब दो संभव तरीके होते जिनमें इसे खारिज किया जा सकता था अर्थात् एक ओर यह अभिनिर्धारित किया जाता कि शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार बनता है, किन्तु, आवश्यकता से अधिक क्षति कारित की गई या अनुकल्पतः इस अधिकार के प्रयोग से मृत्यु कारित नहीं हुई और ऐसी स्थिति में धारा 300 का अपवाद 2 लागू होगा । अभिलेख पर यह सामग्री है कि अभियुक्त और मृतक के बीच कहा-सुनी हुई थी और यह धमकी भी दी गई थी कि इत्तिलाकर्ता और अन्य व्यक्ति भूखंड का कब्जा ग्रहण करेंगे । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि राज कुमार की संपत्ति को खतरा

था और उसने इत्तिलाकर्ता और अन्य व्यक्तियों को दूर भगाने का प्रयास किया था । यद्यपि अभियोजन पक्ष का यह वृत्तांत है कि अभियुक्त भूखंड का कब्जा ग्रहण करने का प्रयास कर रहे थे, फिर भी साक्ष्य की संवीक्षा किए जाने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें निर्माणस्थल पर निर्माण कार्य करने की बहुत जल्दी थी, तदनुसार वे इसी संबंध में कदम बढ़ा रहे थे । इस संदर्भ में, अभियुक्तों के कृत्य पर विचार किया जाना चाहिए । संबद्ध परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मामले पर विचार किया जाना चाहिए न कि किसी एक ही बात की सूक्ष्मता से संवीक्षा की जाए यह सत्य है कि उसने गोली चलाई थी किन्तु ऐसा मृतक की मृत्यु कारित करने के आशय से नहीं किया गया था । अभियोजन पक्ष ने अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की है कि उक्त अभियुक्त में प्रतिशोध की भावना थी या मृतक की हत्या कारित करने के लिए उसका दुर्भावपूर्ण आशय था । यदि ऐसा होता तो यह प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के सिद्धांत के पूर्णतया प्रतिकूल होता । ऐसी स्थिति होने पर उच्च न्यायालय ने इस दलील को ठीक ही स्वीकार किया है कि राज कुमार ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है और उच्च न्यायालय ने उसे दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन ठीक ही दोषी पाया है । यहां हम उन अभियुक्तों की दोषमुक्ति की न्यायोचित्यता के पहलुओं पर विचार करेंगे जो उस अभियुक्त के साथ थे जिसने गोली चलाई थी । राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि वे, अभियुक्त राज कुमार के साथ आए थे इसलिए उनका सामान्य आशय बन गया था । राज्य के विद्वान् काउंसेल श्री मिलिन्द कुमार ने यह दलील दी है कि यदि उनका ऐसा आशय पहले से नहीं था तो यह तत्पश्चात् घटनास्थल पर बन गया था । साक्ष्य का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियुक्त मनोज कुमार और हेमन्त कुमार अभियुक्त राज कुमार के साथ कब्जे के अधिकार की प्रतिरक्षा के लिए आए थे । यह ऐसा मामला है जिसमें अभियुक्त राज कुमार ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

जहां तक न्यायालय का विचार है, वर्तमान मामले के तथ्य उपर्युक्त मामले की तथ्यात्मक स्थिति के समरूप हैं क्योंकि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण केवल राज कुमार द्वारा किया गया है । ऐसे मामले में, ऐसे प्रत्येक अभियुक्त के दोष पर अलग से विचार किया जाना चाहिए जिसने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है । यह मामला

पूर्णतः भिन्न होता, यदि प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार कतई नहीं बनता या अभियुक्तों ने स्पष्ट कार्य किया होता । इस प्रकार, हमारी सुविचारित राय में आन्वयिक (परोक्ष) दायित्व, जैसा कि दंड संहिता की धारा 34 के अधीन परिकल्पित है, लागू नहीं होगा । (पैरा 17)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1971] (1971) 3 एस. सी. सी. 449 :
जोगिन्दर अहीर और अन्य बनाम **बिहार राज्य** । 16

निर्दिष्ट निर्णय

[2010] (2010) 7 एस. सी. सी. 477 :
सिकन्दर सिंह और अन्य बनाम **बिहार राज्य** ; 14

[2008] (2008) 16 एस. सी. सी. 657 :
भंवर सिंह और अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 13

[1980] (1980) सप्ली एस. सी. सी. 215 :
मुहम्मद रमजानी बनाम **दिल्ली राज्य** ; 11, 13

[1979] (1979) 2 एस. सी. सी. 648 :
सलीम जिया बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 11

[1971] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1857 :
विद्या सिंह बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 14

[1969] (1969) 2 एस. सी. सी. 207 :
बिहार राज्य बनाम **नाथू पांडे और अन्य** ; 15, 16

[1968] [1968] 2 एस. सी. आर. 455 :
मुंशी राम और अन्य बनाम **दिल्ली प्रशासन** । 11, 13

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 885. (इसके साथ 2007 की दांडिक अपील सं. 1073 की भी सुनवाई की गई)

2000 की दांडिक अपील सं. 396 और 2003 की दांडिक अपील सं. 1011 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर खंड न्यायपीठ के तारीख

14 फरवरी, 2006 के एक ही निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मिलिंद कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सुशील कुमार जैन, पुनीत जैन, क्रिस्टि जैन, अनुराग गोहिल, (सुश्री) रुचिका गोहिल और प्रतिभा जैन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – वर्तमान अपील विशेष इजाजत द्वारा, 2000 की दांडिक अपील सं. 396 और 2003 की दांडिक अपील सं. 1011 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर खंड न्यायपीठ के तारीख 14 फरवरी, 2006 के एक ही निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसमें उच्च न्यायालय ने राजू **उर्फ** राज कुमार की अपील को भागतः मंजूर किया है जिसके अनुसार दंड संहिता की धारा 302 के अधीन की गई उसकी दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 304 भाग-I में परिवर्तित किया है और इसके अतिरिक्त आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 और 27 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि की है और उसे 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने के साथ 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त छह मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया है । सह-अभियुक्त हेमंत कुमार को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया गया है जिसने राजू और मनोज कुमार के साथ स्वतंत्र रूप से अपील फाइल की थी ।

2. आरंभ में हम यह मत व्यक्त करते हैं कि राजू **उर्फ** राज कुमार की मृत्यु तारीख 8 मार्च, 2012 को हो गई थी और इस संबंध में अभिलेख पर मृत्यु प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया है । इस बात को दृष्टिगत करते हुए, राजू **उर्फ** राज कुमार के संबंध में 2007 की दांडिक अपील सं. 1073 उपशमित की जाती है और इस अपील में केवल अभियुक्त हेमंत कुमार के संबंध में ही कार्यवाही की जाएगी ।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 26 मई, 1998 को पुलिस ने मृतक अनिरुद्ध मिश्रा का कथन श्री कल्याण अस्पताल, सीकर में अभिलिखित किया था जिसमें मृतक ने यह बताया था कि उस दिन लगभग 8.30 बजे अपराह्न में वह अपने भाई बसंत मिश्रा (अभि. सा. 4) और महेश कुमार सैनी (अभि. सा. 3) के साथ अपने और

अपने भाई के रिक्त पड़े हुए भूखंड पर, जो लिसाडिया-का-बास नामक स्थान पर स्थित है, इसलिए गया था कि उन्हें इस बात की आशंका थी कि रामनिवास और शांति प्रसाद के पुत्र उस भूखंड पर कब्जा कर सकते हैं । उस समय रामनिवास और शांति प्रसाद के पुत्र फूलजी लिसाडिया के घर पर मौजूद थे जो उस भूखंड के बराबर में था । मृतक अनिरुद्ध मिश्रा के अनुसार उन्होंने पहले तो उसे गालियां दीं और इसके पश्चात् गोली चलाई जिसके परिणामस्वरूप उसे उसकी छाती के दाईं ओर क्षति पहुंची और उसका भाई रमेश **उर्फ** उमेश (अभि. सा. 5), आहत को अस्पताल ले गया । उसके कथन के आधार पर, संबद्ध पुलिस अधिकारी ने दंड संहिता की धारा 307 और 149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए 1998 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 243 रजिस्ट्रीकृत की । तथापि, अनिरुद्ध की मृत्यु के पश्चात् इस अपराध को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन परिवर्तित कर दिया गया और अन्वेषण आरंभ किया गया । अन्वेषण के दौरान, राजू और हेमंत को गिरफ्तार किया गया और मनोज को फरार घोषित किया गया । राजू और हेमंत के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302, 302/34 तथा आयुध अधिनियम की धारा 3/25, 3/27 और 3/33 के अधीन अपराधों के लिए आरोपपत्र फाइल किया गया और यह 1998 के सेशन मामला सं. 34 की विषयवस्तु बन गया । मनोज के गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए उसके विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया और 2002 के सेशन मामला सं. 8 के रूप में उसका अलग से विचारण किया गया ।

4. अभियुक्तों ने अपने दोषी होने से इनकार किया और यह अभिवाक् किया कि उन्हें संपत्ति विवाद और शत्रुता के कारण मिथ्या फंसाया गया है । अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन साबित करने के लिए विचारण के प्रथम चरण में कुल मिलाकर 16 साक्षियों की परीक्षा की है और 37 दस्तावेजों को चिन्हांकित किया है तथा अभिलेख पर 8 वस्तुओं को प्रस्तुत किया है । विचारण के द्वितीय चरण में अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 12 साक्षियों की परीक्षा की और इतने ही दस्तावेज प्रदर्शित किए हैं । द्वितीय विचारण में प्रतिरक्षा पक्ष ने एक साक्षी प्रस्तुत किया है और अपने अभिवाक् के समर्थन में चार दस्तावेज प्रस्तुत किए हैं ।

5. दोनों विचारणों में एक ही जैसे साक्षी हैं और इनमें मुख्य साक्षी अंजनी कुमार (अभि. सा. 1), मृतक का भाई अर्थात् प्रत्यक्षदर्शी साक्षी महेश कुमार सैनी (अभि. सा. 2), मृतक का भाई बसंत कुमार (अभि. सा. 4),

मृतक का एक अन्य भाई रमेश **उर्फ** उमेश (अभि. सा. 5), डा. वी. के. सोनी (अभि. सा. 6) जिन्होंने मृतक की चिकित्सा परीक्षा की थी और एक्स-रे रिपोर्ट तैयार की थी, डा. जी. आर. तंवर (अभि. सा. 10) जिन्होंने शव-परीक्षा की थी और भगवान सिंह (अभि. सा. 12) अर्थात् अन्वेषक अधिकारी हैं जिनका उल्लेख प्रथम विचारण में किया गया है । मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने राज कुमार को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन तथा आयुध अधिनियम की धारा 25 और 27 के अधीन दोषसिद्ध किया था, इसके अतिरिक्त अभियुक्त हेमंत को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था । द्वितीय विचारण में अभियुक्त मनोज को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था ।

6. अभियुक्तों ने दो अलग-अलग अपीलें फाइल की हैं और उच्च न्यायालय ने अपने एक ही निर्णय और आदेश के अनुसार प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार से संबंधित अभियुक्तों के पक्षकथन को स्वीकार किया है । तथापि, चूंकि अभियुक्त राजू ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है, इसलिए उच्च न्यायालय ने उसकी दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 304 भाग-I में परिवर्तित करते हुए उसे इसमें इसके पूर्व उल्लिखित रूप में दंडादिष्ट किया है । जहां तक अभियुक्त हेमंत और मनोज का संबंध है, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि उनकी दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा 34 के अधीन कायम नहीं रखी जा सकती है क्योंकि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर दंड संहिता की धारा 34 लागू नहीं होगी ।

7. हमने राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री मिलिंद कुमार और प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री सुशील कुमार जैन को सुना है ।

8. इन अपीलों में दो प्रश्न विचार के लिए उद्भूत होते हैं – (I) क्या उच्च न्यायालय ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के अभिवाक् को स्वीकार करने में न्यायोचित किया है ; और (II) क्या उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष उचित है कि दंड संहिता की धारा 34 इस मामले के तथ्यों को लागू नहीं होगी ।

9. विद्वान् विचारण न्यायाधीश के निर्णय का परिशीलन करने पर, यह

उल्लेखनीय है कि विचारण न्यायाधीश ने विस्तार से यह वर्णन किया है कि प्रश्नगत भूमि को लेकर पक्षकारों के बीच विवाद चल रहा था । न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अभिलेख पर प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अनुसार पारसराम लिसाडिया ने रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख (प्रदर्श पी-9) के अनुसार रमेश कुमार को भूखंड विक्रय किया था जो मृतक अनिरुद्ध मिश्रा का बड़ा भाई है । अभिलेख पर यह प्रस्तुत किया गया है कि पारसराम लिसाडिया और फूलचंद लिसाडिया के बीच भूखंड को लेकर विवाद चल रहा था और इसी कारण पारसराम ने स्थायी व्यादेश के लिए 1986 का सिविल वाद सं. 131 फाइल किया था जिसमें यह अभिकथन किया गया था कि तारीख 11 जुलाई, 1986 को फूलचंद ने पारसराम को उस भूखंड पर निर्माण कार्य करने से रोका था । तारीख 17 सितम्बर, 1997 को फूलचंद के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किए गए वाद में एकपक्षीय डिक्री पारित की गई थी जिसके अनुसार फूलचंद को प्रश्नगत भूमि को लेकर पारसराम के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका गया था । प्रदर्श पी-9 से भी यह भी पता चलता है कि वादी के पक्ष में वाद विनिश्चित किए जाने के समय तक पारसराम ने रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख (प्रदर्श पी-9) के अनुसार रमेश मिश्रा को वह भूखंड बेच दिया था और रमेश मिश्रा ने प्रदर्श पी-12 और स्थल नक्शा (प्रदर्श पी-14) के अनुसार निर्माण कार्य की मंजूरी भी प्राप्त कर ली थी । ये घटनाएं शीघ्रता के साथ घटित होती गईं और आवश्यक मंजूरी प्राप्त करने के पश्चात् रमेश ने निर्माण कार्य के लिए सामग्री एकत्र करनी आरंभ कर दी । रमेश (अभि. सा. 5) के साक्ष्य में यह उल्लेख है कि विक्रय-विलेख निष्पादित किए जाने के पश्चात् भी पारसराम और फूलचंद के बीच विवाद बना रहा । अभिलेख पर यह भी प्रस्तुत किया गया है कि निर्माण कार्य की मंजूरी घटना के केवल चार दिन पूर्व प्राप्त की गई थी ; और इत्तिलाकर्ता और अभियुक्तों के बीच भूखंड के संबंध में विवाद हो गया क्योंकि मूल स्वामी फूलचंद ने उक्त भूखंड को अभियुक्तों के पिता शांति प्रसाद के पास बंधक कर दिया था और उन्हीं के पास उसका कब्जा था । जैसा कि हमें अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से दिखाई पड़ता है, इस संबंध में तनिक भी संदेह नहीं है कि राज कुमार ने गोली चलाई थी जिसके परिणामस्वरूप अनिरुद्ध की मृत्यु हुई । यह भी स्पष्ट है कि भूखंड को लेकर विवाद चल रहा था और उसका कब्जा अभी तक अभियुक्तों के पास है । साक्ष्य से यह भी सामने आया है कि अभियुक्त वाद में पक्षकार नहीं थे । ऐसी स्थिति में, रमेश निर्माणस्थल पर सामग्री इकट्ठा करके निर्माण कार्य करने का प्रयास कर रहा था, वास्तव में उसने कब्जा लेने के लिए अपने भाई अनिरुद्ध और अन्य भाइयों को वहां भेजा था ।

मृतक और अन्य व्यक्तियों के घटनास्थल पर पहुंचने के पश्चात् अभियुक्त सूचना प्राप्त करने पर लिसाडिया के मकान पर पहुंचे और आरंभ में तो उनके बीच कहा-सुनी हुई और किन्तु उसके पश्चात् गोली चलाई गई ।

10. उच्च न्यायालय ने बहुत से पहलुओं पर विचार किया है जो इस प्रकार हैं कि विवादित भूखंड के संबंध में स्वामित्व और कब्जे को लेकर विवाद चल रहा था ; इत्तिलाकर्ता और अन्य व्यक्तियों ने घटना के कुछ दिन पूर्व प्लिन्थ लेवल तक निर्माण कार्य करने के लिए सामग्री इकट्ठी की ; नगर निगम ने घटना के केवल चार दिन पूर्व मंजूरी प्रदान की है ; रमेश (अभि. सा. 5) और अन्य व्यक्तियों को यह आशंका थी कि भूखंड का कब्जा उनके हाथ से चला जाएगा ; कब्जे के संबंध में अभियुक्तों द्वारा सकारात्मक अभिवाक् किया गया है ; और अभियुक्त राज कुमार ने संपत्ति के कब्जे की प्रतिरक्षा करने के आशय से और मृतक और अन्य व्यक्तियों को दूर भगाने के लिए गोली चलाई थी, किन्तु दुर्भाग्यवश गोली मृतक को लगी । साक्ष्य का उपर्युक्त विश्लेषण करने पर, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त राज कुमार ने अपनी प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है ।

11. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री मिलिंद कुमार ने यह दलील दी है कि अभियुक्तों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन दिए गए अपने कथनों में प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अभिवाक् नहीं किया है और इसीलिए उच्च न्यायालय उस पर विचार नहीं कर सकता था । यह भी मत व्यक्त किया गया है यदि यह उपधारित कर लिया जाए कि पक्षकथन पर विचार किया जा सकता है, वर्तमान मामले में अभियुक्त प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार को सिद्ध करने के भार का निर्वहन करने में असफल रहे हैं । इस संदर्भ में, हम **मुंशी राम और अन्य** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हैं जिसमें यह अधिकथित किया गया है कि यदि अभियुक्त प्राइवेट प्रतिरक्षा का अभिवाक् न करें और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता हो तब भी न्यायालय ऐसे अभिवाक् पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है और ऐसे अभिवाक् को साबित करने का भार अभियुक्त पर पड़ेगा और उक्त अभिवाक् के पक्ष में अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता दर्शित करके साबित करने के भार का निर्वहन किया जा सकता है । **सलीम जिया** बनाम **उत्तर**

---

[1] [1968] 2 एस. सी. आर. 455.

प्रदेश राज्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि यह सत्य है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अभिवाक् को सिद्ध करने का भार ऐसा नहीं है जैसाकि युक्तियुक्त संदेह के परे अपना पक्षकथन साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर पड़ता है, अभियुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने अभिवाक् पूर्ण रूप से साबित करे और वह अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता को सिद्ध करते हुए अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा में प्राइवेट प्रतिरक्षा का अभिवाक् कर सकता है और या प्रतिरक्षा साक्षी प्रस्तुत करके ऐसा कर सकता है और अपनी जिम्मेदारी से निवृत्त हो सकता है । इसी प्रकार **मुहम्मद रमजानी** बनाम **दिल्ली राज्य**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह अतिसामान्य बात है कि सबूत का भार जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 के अधीन प्राइवेट प्रतिरक्षा के अभिवाक् को सिद्ध करने के लिए अभियुक्त पर पड़ता है, इतना कठिन नहीं है जितना अभियोजन पक्ष पर उस अपराध के संघटकों को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने के लिए पड़ता है जिसके संबंध में अभियुक्त पर आरोप लगाया गया है ।

12. वर्तमान मामले में, प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अभिवाक् अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर उद्भूत हुआ है । जहां तक सबूत के भार का संबंध है, हमारा यह निष्कर्ष है कि अधिसंभाव्यता की प्रबलता के सिद्धांत को कायम रखने के लिए प्रत्यक्ष और दस्तावेजी साक्ष्य है । यह नहीं कहा जा सकता है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर यह अभिवाक् त्यक्त किया जा सके । इस प्रकार, उपर्युक्त दलील अस्वीकार्य होने के कारण एतद्द्वारा खारिज की जाती है ।

13. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि जब अभियुक्तों ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया था और मृतक की मृत्यु कारित की थी तब ऐसी स्थिति में उन सभी को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया जाना चाहिए था । इस संबंध में, इसके पूर्व कि वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करें, हम कतिपय निर्णयज विधि निर्दिष्ट कर रहे हैं । **मुंशी राम** (उपरोक्त) वाले मामले में प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि विधि के अधीन यह अपेक्षा नहीं की गई है कि कोई व्यक्ति जिसकी संपत्ति पर अतिचारियों द्वारा बलपूर्वक कब्जा करने

---

[1] (1979) 2 एस. सी. सी. 648

[2] (1980) सप्ली एस. सी. सी. 215.

का प्रयास किया गया है वह वहां से भाग जाए और प्राधिकारियों की संरक्षा में आ जाए क्योंकि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार से सामाजिक उद्देश्य पूरा होता है और इस अधिकार का अर्थ उदार रूप से लगाना चाहिए । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि ऐसे अधिकार का प्रयोग करने से दुष्चरित्र व्यक्ति अपराध करने से न केवल रुक सकते हैं बल्कि इससे स्वतंत्र नागरिक में अपने अधिकार का सही प्रयोग करने की भावना भी पैदा होती है क्योंकि संकट से बचकर भाग जाने से अधिक अपमानजनक कोई कार्य नहीं है । **मुहम्मद रमजानी** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि यह भी सुस्थापित है कि जिस व्यक्ति को अपनी या अन्य किसी व्यक्ति की जान का खतरा होता है, उससे यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह खतरे को दूर करने के लिए बहुत बारीकी से सोच-विचार करके कम से कम बल का प्रयोग करे । यदि आवेग की तीव्रता में वह सुनिश्चित और सटीक बल से अधिक बल का प्रयोग कर लेता है तब ऐसी स्थिति में उसे विधि के अधीन छूट मिल सकती है । **भंवर सिंह और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का पूर्णतया उचित प्रयोग करने के लिए यह साबित किया जाना चाहिए कि प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार अभियुक्त के पक्ष में था और इस अधिकार का प्रयोग करने से ही मृत्यु कारित हुई है और यदि न्यायालय को उक्त अभिवाक् खारिज करना होता तब दो संभव तरीके होते जिनमें इसे खारिज किया जा सकता था अर्थात् एक ओर यह अभिनिर्धारित किया जाता कि शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार बनता है, किन्तु, आवश्यकता से अधिक क्षति कारित की गई या अनुकल्पतः इस अधिकार के प्रयोग से मृत्यु कारित नहीं हुई और ऐसी स्थिति में धारा 300 का अपवाद 2 लागू होगा ।

14. उपर्युक्त सिद्धांतों की कसौटी के आधार पर प्रस्तुत साक्ष्य और उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की परख की जानी चाहिए । अभिलेख पर यह सामग्री है कि अभियुक्त और मृतक के बीच कहा-सुनी हुई थी और यह धमकी भी दी गई थी कि इत्तिलाकर्ता और अन्य व्यक्ति भूखंड का कब्जा ग्रहण करेंगे । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि राज कुमार की संपत्ति को खतरा था और उसने इत्तिलाकर्ता और अन्य व्यक्तियों को दूर भगाने का प्रयास किया था । यद्यपि अभियोजन पक्ष का यह वृत्तांत है कि अभियुक्त भूखंड का कब्जा ग्रहण करने का प्रयास कर

---

[1] (2008) 16 एस. सी. सी. 657.

रहे थे, फिर भी साक्ष्य की संवीक्षा किए जाने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें निर्माणस्थल पर निर्माण कार्य करने की बहुत जल्दी थी, तदनुसार वे इसी संबंध में कदम बढ़ा रहे थे । इस संदर्भ में, अभियुक्तों के कृत्य पर विचार किया जाना चाहिए । संबद्ध परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मामले पर विचार किया जाना चाहिए न कि किसी एक ही बात की सूक्ष्मता से संवीक्षा की जाए जैसाकि **विद्या सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] और **सिकन्दर सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है । यह सत्य है कि उसने गोली चलाई थी किन्तु ऐसा मृतक की मृत्यु कारित करने के आशय से नहीं किया गया था । अभियोजन पक्ष ने अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की है कि उक्त अभियुक्त में प्रतिशोध की भावना थी या मृतक की हत्या कारित करने के लिए उसका दुर्भावपूर्ण आशय था । यदि ऐसा होता तो यह प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के सिद्धांत के पूर्णतया प्रतिकूल होता । ऐसी स्थिति होने पर उच्च न्यायालय ने इस दलील को ठीक ही स्वीकार किया है कि राज कुमार ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है और उच्च न्यायालय ने उसे दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन ठीक ही दोषी पाया है ।

15. यहां हम उन अभियुक्तों की दोषमुक्ति की न्यायोचितता के पहलुओं पर विचार करेंगे जो उस अभियुक्त के साथ थे जिसने गोली चलाई थी । राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि वे, अभियुक्त राज कुमार के साथ आए थे इसलिए उनका सामान्य आशय बन गया था । राज्य के विद्वान् काउंसेल श्री मिलिन्द कुमार ने यह दलील दी है कि यदि उनका ऐसा आशय पहले से नहीं था तो यह तत्पश्चात् घटनास्थल पर बन गया था । साक्ष्य का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियुक्त मनोज कुमार और हेमन्त कुमार अभियुक्त राज कुमार के साथ कब्जे के अधिकार की प्रतिरक्षा के लिए आए थे । यह ऐसा मामला है जिसमें अभियुक्त राज कुमार ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है । **बिहार राज्य** बनाम **नाथू पांडे और अन्य**[3] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने, उच्च न्यायालय के इन निष्कर्षों को स्वीकार

---

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1857.

[2] (2010) 7 एस. सी. सी. 477.

[3] (1969) 2 एस. सी. सी. 207.

करते हुए कि कुछ अभियुक्तों ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है, यह राय व्यक्त की है कि यह कहना संभव नहीं होगा कि सभी अभियुक्तों का हत्या करने का सामान्य आशय था और जिन अभियुक्तों ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है वे उनकी हत्या के लिए जिम्मेदार होंगे ।

16. **जोगिन्दर अहीर और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने **नाथू पांडे और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया है और दंड संहिता की धारा 34 के लागू होने के संबंध में लगभग ऐसे ही निष्कर्षों पर विचार किया है और यह राय व्यक्त की है कि अपराध कारित करने के लिए सभी अभियुक्तों का सामान्य आशय नहीं था । उक्त मामले में उच्च न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-II के अधीन उस मामले में के अभियुक्त-अपीलार्थियों को दोषसिद्ध ठहराया । उस मामले में कार्यवाही करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत नहीं हैं कि मामले के तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर अपीलार्थियों का ऐसा आशय हो सकता था । निश्चय ही उनका संपत्ति के अधिकार में अतिक्रमण से प्रतिरक्षा करने का सामान्य आशय था । ऐसा करने में यदि उनमें से एक या दो अभियुक्तों ने आवश्यकता से अधिक शारीरिक क्षति कारित की थी तब अन्य अभियुक्तों का ऐसा सामान्य आशय नहीं माना जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई । धारा 34 केवल वहां लागू होती है जहां सामान्य आशय को अग्रसर करने में अनेक व्यक्तियों द्वारा आपराधिक कार्य किया गया हो । यह साबित या सिद्ध नहीं किया गया है कि अपीलार्थियों ने कोई भी स्पष्ट कृत्य किया है जिससे यह दर्शित होता हो कि उनका भी उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों जैसा आशय था जिन्होंने मृतक के सिर पर ऐसी क्षति या क्षतियां पहुंचाईं जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई । अतः, उसे संभवतः दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-II के अधीन दोषी नहीं ठहराया जा सकता है ।"

---

[1] (1971) 3 एस. सी. सी. 449.

17. जहां तक हमारा विचार है, वर्तमान मामले के तथ्य उपर्युक्त मामले की तथ्यात्मक स्थिति के समरूप हैं क्योंकि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण केवल राजकुमार द्वारा किया गया है । ऐसे मामले में, ऐसे प्रत्येक अभियुक्त के दोष पर अलग से विचार किया जाना चाहिए जिसने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है । यह मामला पूर्णतः भिन्न होता, यदि प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार कतई नहीं बनता या अभियुक्तों ने स्पष्ट कार्य किया होता । इस प्रकार, हमारी सुविचारित राय में आन्वयिक (परोक्ष) दायित्व, जैसा कि दंड संहिता की धारा 34 के अधीन परिकल्पित है, लागू नहीं होगा ।

18. हमारे उपर्युक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए, हमें इन अपीलों में कोई भी गुणता दिखाई नहीं देती है, तदनुसार ये खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./अनू.

[2014] 3 उम. नि. प. 387

कर्नाटक राज्य और एक अन्य

बनाम

एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ (गवर्नमेंट रिकग्नाइज़ड - अनएडेड - इंग्लिश मीडियम) प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स और अन्य

तथा

नल्लूर प्रसाद और अन्य

बनाम

कर्नाटक राज्य और अन्य

तथा

आर. जी. नदादूर और अन्य

बनाम

शुभोदय विद्या समस्थे और एक अन्य

तथा

कर्नाटक राज्य और अन्य

बनाम

मोहम्मद हुसैन जुका

6 मई, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा, न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक, न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय, न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 29, 30 और 350क – अल्पसंख्यक-वर्गों के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम – मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अधिरोपित करना – अल्पसंख्यक-वर्ग के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा अधिरोपित करना अनुच्छेद 30 का अतिक्रमणकारी है क्योंकि अल्पसंख्यक-वर्ग की रुचि को अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा में शिक्षा देने तक सीमित करने की आवश्यकता नहीं है और अनुच्छेद 350क के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा लागू करने की बाध्यता अधिरोपित नहीं की जा सकती है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 19(1)(क), 21 और 21क – वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य – प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम का चयन करने संबंधी बालक का अधिकार – शिक्षा के माध्यम का चयन करने संबंधी बालक का अधिकार अनुच्छेद 19(1)(क) द्वारा प्रत्याभूत वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से न कि अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क से व्युत्पन्न होता है और राज्य ऐसे अधिकार पर अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित प्रयोजनों के सिवाय निर्बंधन अधिरोपित नहीं कर सकता ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 19(1)(छ) और 226 – शिक्षा – प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय – शिक्षा का माध्यम – प्राइवेट गैर-

सहायताप्राप्त विद्यालय को शिक्षा के माध्यम का चयन करने का अधिकार प्राप्त है और राज्य अपनी विनियमनकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए भी उसे किसी विशिष्ट भाषा में शिक्षा देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और 19(1)(छ) – शिक्षा – सभी विद्यालयों के लिए चाहे वे सरकार द्वारा स्थापित या सहायताप्राप्त हैं अथवा गैर-सहायताप्राप्त हैं, मान्यता की आवश्यकता होती है और विद्यालय स्थापित करने के अधिकार को मान्यता की ईप्सा करने के अधिकार से भ्रमित नहीं किया जाना है ।

कर्नाटक सरकार ने तारीख 19 जून, 1989 को एक सरकारी आदेश जारी किया जिसमें यह विहित किया गया था कि "पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी ।" तारीख 22 जून, 1989 को कर्नाटक सरकार ने एक शुद्धिपत्र जारी करके तारीख 19 जून, 1989 के पूर्ववर्ती सरकारी आदेश में उपर्युक्त शब्दों के स्थान पर "पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक जहां यह प्रत्याशा की जाती है कि सामान्य तौर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी" शब्द प्रतिस्थापित किए ।तारीख 19 जून, 1989 और 22 जून, 1989 के आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि कर्नाटक सरकार के दोनों आदेश सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य हैं । इसके पश्चात्, कर्नाटक सरकार ने इस विषय से संबंधित सभी पूर्ववर्ती आदेशों को रद्द करते हुए प्राथमिक और उच्च विद्यालयों में शैक्षणिक वर्ष 1994-1995 से अपनाई जाने वाली भाषा नीति के संबंध में तारीख 29 अप्रैल, 1994 को एक नया आदेश जारी किया जिसमें यह उपबंध किया गया था कि सभी सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शैक्षणिक वर्ष 1994-1995 से शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कन्नड़ भाषा होगी और पांचवीं कक्षा से छात्रों को शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में बदलने की अनुज्ञा दी जा सकती है । तथापि, इस सरकारी आदेश में यह स्पष्ट किया गया था कि केवल उन छात्रों को, जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी है, विद्यमान मान्यताप्राप्त अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अंग्रेजी माध्यम में अध्ययन करने की अनुज्ञा दी जा सकती है । तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश के उन खंडों से व्यथित होकर जिनमें यह विहित किया गया था कि सभी सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कन्नड़ भाषा ही होगी,

एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स, कर्नाटक ने 1994 की रिट याचिका सं. 14363 फाइल की और अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी कि किसी विद्यालय में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क), अनुच्छेद 19(1)(छ), अनुच्छेद 26, अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30(1) के अधीन एक मूल अधिकार है और यह कि कर्नाटक सरकार के तारीख 29 अप्रैल, 1994 के आदेश के आक्षेपित खंड संविधान के अधिकारातीत हैं । दूसरी ओर, कर्नाटक राज्य और उसके अधिकारियों ने इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के पूर्व विनिश्चय का अवलंब लिया और यह दलील दी कि राज्य प्राथमिक शिक्षा को विनियमित करने वाली अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए नीति के रूप यह विहित कर सकता है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा या कन्नड़ भाषा होगी । कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने रिट याचिका और अन्य सभी संसक्त रिट याचिकाओं की सुनवाई करने के पश्चात् रिट याचिकाएं मंजूर कर लीं और तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश के खंड 2, 3, 6 और 8 को अभिखंडित कर दिया जहां तक वे सरकार द्वारा चलाए जाने वाले या सहायताप्राप्त विद्यालयों से भिन्न विद्यालयों को लागू होते हैं किन्तु तारीख 29 अप्रैल, 1994 के शेष सरकारी आदेश को कायम रखा । कर्नाटक राज्य और लोक शिक्षा आयुक्त, बंगलौर ने उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के तारीख 2 जुलाई, 2008 के निर्णय से व्यथित होकर 2013 की सिविल अपील सं. 5166-5190 फाइल की है । उन पन्द्रह शिक्षाविदों ने भी, जिन्होंने यह दावा किया है कि उनकी भी यह इच्छा है कि कर्नाटक राज्य में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक प्राथमिक शिक्षा बालक की मातृभाषा या कन्नड़ भाषा में होनी चाहिए, यह घोषणा करने के लिए कि तारीख 29 अप्रैल, 1994 का सरकारी आदेश गैर-सहायताप्राप्त सरकारी मान्यताप्राप्त प्राथमिक विद्यालयों की बाबत सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य है और राज्य सरकार को तारीख 29 अप्रैल, 1994 का सरकारी आदेश लागू करने का निदेश देने के लिए परमादेश की रिट जारी करने के लिए 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 290 फाइल की है । चूंकि उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ का तारीख 2 जुलाई, 2008 का निर्णय एक वर्ष से अधिक समय से लागू नहीं किया गया था इसलिए उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 2009 की रिट अपील सं. 1682 और अन्य संसक्त मामलों में तारीख 3 जुलाई, 2009 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा कर्नाटक सरकार को उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के तारीख 2

जुलाई, 2008 के निर्णय का अनुपालन करने के लिए कहा गया और 2009 की रिट अपील सं. 1682 में तारीख 3 जुलाई, 2009 के उक्त आदेश से व्यथित होकर कर्नाटक सरकार के शिक्षा विभाग के विभिन्न अधिकारियों ने 2013 की सिविल अपील सं. 5191-5199 फाइल की हैं । कर्नाटक उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 1994 की रिट याचिका सं. 3044 में तारीख 22 जनवरी, 1996 के आदेश द्वारा कर्नाटक राज्य को यह निदेश दिया कि किसी संस्था को पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अंग्रेजी माध्यम में विद्यालय चलाने की अनुज्ञा दी जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को 1997 की रिट अपील सं. 2740 में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई किन्तु उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह कथन करते हुए रिट अपील खारिज कर दी कि उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के तारीख 8 जुलाई, 2008 के आदेश पर इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत याचिका में रोक नहीं लगाई गई है । कर्नाटक राज्य ने 1997 की रिट अपील सं. 2740 में खंड न्यायपीठ द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर 2013 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 32858 फाइल की है । इन सभी मामलों की इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा सुनवाई की गई थी, खंड न्यायपीठ ने एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा ये प्रश्न संविधान पीठ को विचार करने के लिए निर्देशित किए गए – (i) मातृभाषा से क्या अभिप्रेत है ? यदि यह उस भाषा के प्रति निर्देश है जिसमें बालक सहज होगा तो इसका निर्णय कौन करेगा ? (ii) क्या किसी छात्र या किसी माता-पिता या किसी नागरिक को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार है ? (iii) क्या किसी भी प्रकार से मातृभाषा अधिरोपित करने से संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 29 और 30 के अधीन मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ? (iv) क्या सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में सरकारी सहायताप्राप्त विद्यालय और प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय भी आते हैं ? (v) क्या राज्य संविधान के अनुच्छेद 350क के आधार पर भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को प्राथमिक विद्यालयों में केवल मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम चुनने के लिए बाध्य कर सकता है ? उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों और रिट याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संविधान के अनुच्छेद 350क के पठन मात्र से ही यह दर्शित होगा कि यह प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय

प्राधिकारी पर अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का कर्तव्य डालता है । अतः, अनुच्छेद 350क में "मातृभाषा" अभिव्यक्ति से किसी विशिष्ट राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग की मातृभाषा अभिप्रेत है और इससे स्पष्ट रूप से उस विशिष्ट भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग की भाषा अभिप्रेत होगी । अतः, संविधान के संदर्भ में मातृभाषा से किसी राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग की भाषा अभिप्रेत होगी और बालक के माता-पिता या संरक्षक ही यह विनिश्चय करेंगे कि बालक की मातृभाषा क्या है । संविधान में कहीं भी यह उपबंध नहीं किया गया है कि मातृभाषा वह भाषा होती है जिसमें बालक सहज महसूस करता है और जबकि "मातृभाषा" का यह अर्थ अभिव्यक्त का संभावित अर्थ हो सकता है किन्तु संविधान के अनुच्छेद 350क में या संविधान के किसी अन्य उपबंध में मातृभाषा का यह अर्थ नहीं है और इसलिए न तो राज्य की शक्ति को विस्तारित किया जा सकता है और न ही यह कहकर मूल अधिकार को निर्बंधित किया जा सकता है कि मातृभाषा वह भाषा होती है जिसमें बालक सहज महसूस करता है । (पैरा 25 और 26)

किसी व्यष्टि के लिए स्वयं अपने तरीके से अपने व्यक्तित्व का विकास करने हेतु वाक् और अभिव्यक्ति के मामले में स्वातंत्र्य या विकल्प पूर्णतः आवश्यक है और यदि यह एकमात्र कारण नहीं तो यह एक कारण अवश्य है कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन प्रत्येक नागरिक को वाक्-स्वातंत्र्य. और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार प्रत्याभूत किया गया है । वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अंतर्गत शिक्षा प्राप्त करने, जानकारी प्राप्त करने और ग्रहण करने का अधिकार भी आता है और शिक्षा, जानकारी दिए जाने और ग्रहण किए जाने का अधिकार भी आता है । इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों के अनुरूप संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के अंतर्गत विद्यालय के प्राथमिक स्तर पर बालक की रुचि की भाषा में शिक्षा दिए जाने की बालक की स्वतंत्रता भी आती है और राज्य ऐसी रुचि पर मात्र इस कारण निर्बंधन अधिरोपित नहीं कर सकता कि यदि बालक को विद्यालय के प्राथमिक स्तर पर उसकी मातृभाषा में पढ़ाया जाए तो यह उसके लिए अधिक उपयोगी होगा । अतः, बालक या उसकी ओर से उसके माता-पिता या संरक्षक को शिक्षा के उस माध्यम के संबंध में, जिसमें वह विद्यालय में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्त करना चाहेगा, रुचि की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है । संविधान निर्माताओं का आशय राज्य को

संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) में उल्लिखित प्रयोजनों के सिवाय किसी नागरिक के वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के मूल्यवान अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने के लिए सशक्त करना नहीं था क्योंकि उन्होंने यह सोचा कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर अन्य निर्बंधन अधिरोपित करना व्यष्टिक नागरिक के विकास और व्यक्तित्व के लिए हानिप्रद होगा और राष्ट्र के व्यापक हित में नहीं होगा । अतः, जब यह निष्कर्ष निकाल लिया जाता है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य में किसी बालक का अपनी रुचि के शिक्षा-माध्यम में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी शामिल होगा तो इस अधिकार की अनुज्ञेय सीमाएं केवल वे होंगी जो संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) के अंतर्गत आती हैं और किसी बालक के ऐसे अधिकार को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार से केवल इस कारण अलग नहीं किया जा सकता कि राज्य को संविधान के अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनों के लिए बालक के इस अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने की कोई शक्ति नहीं होगी । संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन बालक को चौदह वर्ष की आयु तक राज्य से निःशुल्क शिक्षा का दावा करने का मूल अधिकार है । संविधान के अनुच्छेद 21क की भाषा से यह और भी स्पष्ट होता है कि ऐसी निःशुल्क शिक्षा जिसका कोई बालक राज्य से दावा कर सकता है, उस रीति में होगी जैसा कि राज्य विधि द्वारा अवधारित करे । अतः, यदि राज्य विधि द्वारा यह अवधारित करता है कि उन विद्यालयों में, जहां संविधान के अनुच्छेद 21क के अधीन निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराई जाती है, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कोई अन्य भाषा होगी तो बालक संविधान के अनुच्छेद 21 या अनुच्छेद 21क के अधीन अधिकार के तौर पर यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे शिक्षा का वह माध्यम चुनने का अधिकार है जिसमें उसे राज्य द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए । उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं था कि शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन शिक्षा के अधिकार में अंतर्निहित है । अतः, बालक और उसकी ओर से उसके माता-पिता या संरक्षक को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन न कि अनुच्छेद 21 या अनुच्छेद 21क के अधीन प्राथमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार है । (पैरा 29, 31, 32 और 33)

संविधान के अनुच्छेद 29 के खंड (1) को पढ़ने से यह प्रकट होता है कि उसमें यह उपबंधित है कि भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के

निवासी नागिरकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा और अनुच्छेद 30 के खंड (1) में यह उपबंधित है कि शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक-वर्गों का अधिकार – (1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा । अल्पसंख्यक-वर्गों को "अपनी रुचि" की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार है और इसलिए उन्हें शिक्षा का वह माध्यम चुनने का अधिकार है जिसमें उनके द्वारा स्थापित और प्रशासित संस्थाओं में शिक्षा दी जाएगी । अनुच्छेद 30(1) के अधीन अल्पसंख्यक समुदाय की "रुचि" को अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा में शिक्षा देने तक सीमित करने की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 35, 36 और 37)

संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) में "उपजीविका" शब्द के अंतर्गत ऐसा क्रियाकलाप भी आता है जिसके परिणामस्वरूप छात्रों को ज्ञान दिया जाता है भले ही ऐसे क्रियाकलाप में लाभ अर्जन का कोई तत्व न हो । तथापि, संविधान के अनुच्छेद 30(1) की तरह अनुच्छेद 19(1)(छ) में "रुचि" शब्द नहीं आता है । "रुचि" शब्द के अभाव से कोई तात्विक अंतर नहीं पड़ता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 19 का शीर्षक "स्वातंत्र्य-अधिकार" है और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) में "उपजीविका" शब्द से पूर्व "कोई" शब्द के साथ "स्वतंत्रता" शब्द से यह अभिप्रेत होगा कि शिक्षा संस्था की स्थापना और प्रशासन करने के अधिकार के अंतर्गत किसी नागरिक का अपनी रुचि के शिक्षा माध्यम में शिक्षा देने के लिए विद्यालय स्थापित करने का अधिकार भी आएगा । यदि कोई नागरिक यह सोचता है कि उसे किसी विद्यालय की स्थापना करनी चाहिए और उस विद्यालय में शिक्षा का माध्यम कोई विशिष्ट भाषा होनी चाहिए तो वह संविधान के अनुच्छेद 19(6) के अधीन राज्य द्वारा बनाए गए युक्तियुक्त विनियमों के अधीन रहते हुए ऐसे अधिकार का प्रयोग कर सकता है । अतः, कोई ऐसा प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय, जो कि अल्पसंख्यक विद्यालय नहीं है और जो संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) के संरक्षण का उपभोग नहीं कर सकता है, उस विद्यालय में बालकों को शिक्षा देने के लिए शिक्षा के माध्यम का चयन कर सकता है । (पैरा 38)

राज्यों और संघ के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम के अधीन प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा की बाबत विधान बनाने की शक्ति

अनन्य रूप से राज्यों में निहित है और राज्य शिक्षा का माध्यम विहित कर सकता है । तथापि, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम विहित करने संबंधी राज्य की इस शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) और अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों का उल्लंघन करके नहीं किया जा सकता है । यदि शिक्षा के माध्यम का सीधा संबंध या प्रभाव उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में स्तर के अवधारण पर पड़ता है तो शिक्षा का माध्यम विहित करने के लिए विधायी शक्ति का प्रयोग संघ द्वारा किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, उच्चतर शिक्षा के उन विषयों में, जिनके लिए केवल अंग्रेजी में पुस्तकें उपलब्ध हैं और जो विषय केवल अंग्रेजी में ही उचित रूप से पढ़ाए जा सकते हैं, अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में विहित करने का सीधा संबंध और प्रभाव शिक्षा के स्तर के अवधारण पर पड़ सकता है । तथापि, प्राथमिक विद्यालय स्तर पर पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक विद्यालयों में मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में विहित करने का शिक्षा स्तर के अवधारण पर कोई सीधा संबंध और प्रभाव नहीं है और इससे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) और अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । (पैरा 40)

यद्यपि विशेषज्ञों की इस संबंध में एक राय हो सकती है कि प्राथमिक विद्यालय में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालक अच्छी प्रकार से सीख सकते हैं यदि उन्हें उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाता है तथापि, राज्य मान्यता प्रदान करने की शर्त के रूप में यह अनुबद्ध नहीं कर सकता कि संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) के अधीन संरक्षित अल्पसंख्यक-वर्ग के विद्यालयों में और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन कोई भी उपजीविका करने के अधिकार का उपभोग करने वाले प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम ऐसे अनुबंध के रूप में बालक की मातृभाषा होगी । मातृभाषा अधिरोपित करने से संविधान के अनुच्छेद 19, अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 के अधीन मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । (पैरा 42)

अनुच्छेद 350क में यह उपबंधित है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा । संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन

भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग को शिक्षा का ऐसा माध्यम चुनने का अधिकार है जिसमें उस विद्यालय में, जिसकी स्थापना उसने की है, प्राथमिक स्तर पर शिक्षा दी जाएगी । अतः, अनुच्छेद 350क का निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है कि वह राज्य को इस बात के लिए सशक्त करता है कि वह किसी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग को अनुच्छेद 30(1) के अधीन इस मूल अधिकार का अतिक्रमण करते हुए उसके द्वारा स्थापित प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा के माध्यम के रूप में केवल अपनी मातृभाषा का चयन करे । तदनुसार, संविधान के अनुच्छेद 350क के अधीन राज्य को भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में केवल उनकी मातृभाषा का चयन करने के लिए बाध्य करने की कोई शक्ति नहीं है । (पैरा 44)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	आई. एल. आर. 2008 (3) कर्नाटक 2895 : **एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स इन कर्नाटक** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** ;	8
[2005]	(2005) 6 एस. सी. सी. 537 : **पी. ए. इनामदार और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	22
[2004]	(2004) 6 एस. सी. सी. 264 : **ऊषा मेहता और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	14, 17
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 481 : **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** ;	15, 22, 38, 39, 43
[1995]	(1995) 2 एस. सी. सी. 161 : **सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार और अन्य** बनाम **क्रिकेट एसोसिएशन आफ बंगाल और अन्य** ;	18, 31
[1994]	(1994) 1 एस. सी. सी. 550 : **इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पेरेंट्स एसोसिएशन** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** ;	2, 4, 11, 20, 41

[1993]	(1993) 1 एस. सी. सी. 645 : **उनी कृष्णन्, जे. पी. और अन्य** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ;	21, 33, 43
[1988]	(1988) 3 एस. सी. सी. 410 : **आडिसी कम्यूनिकेशन्स (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **लोकविद्यान संगठन** ;	30
[1974]	(1974) 1 एस. सी. सी. 717 : **अहमदाबाद सेंट ज़ेवियर सोसाइटी और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य** ;	22
[1972]	(1972) 2 एस. सी. सी. 788 : **बैनेट कोलमेन एंड कंपनी** बनाम **भारत संघ** ;	30
[1971]	(1971) 2 एस. सी. सी. 269 : **डी. ए. वी. कालेज और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	13, 22
[1971]	ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1731 : **डी. ए. वी. कालेज, भटिंडा और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	22, 36
[1969]	[1969] 2 एस. सी. आर. 73 : **रेवेरेंड फादर डब्ल्यू. प्रूस्ट और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ;	69
[1963]	ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 703 : **गुजरात विश्वविद्यालय और एक अन्य** बनाम **श्री कृष्ण रंगनाथ मुधोलकर और अन्य** ;	12, 40
[1962]	ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 305 : **साकल पेपर्स (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **भारत संघ** ;	30
[1959]	[1959] एस. सी. आर. 995 : **केरल एजूकेशन बिल, 1957** ;	22, 37
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 561 : **मुम्बई राज्य** बनाम **मुम्बई शिक्षा सोसाइटी और अन्य** ;	13
[1950]	ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 124 : **रमेश थापर** बनाम **मद्रास राज्य** ;	30, 32

[1950] ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 27 :
ए. के. गोपालन बनाम **मद्रास राज्य** । 24

अपीली (सिविल) अधिकारिता : **2013 की सिविल अपील सं. 5166-5190. [इसके साथ 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 290 और 2014 की सिविल अपील सं. 5090 और 2013 की सिविल अपील सं. 5191-5199 भी सुनी गईं ।]**

1997 की रिट अपील सं. 2740 (ई.डी.एन.) में कर्नाटक उच्च न्यायालय की बंगलौर खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 21 फरवरी, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री प्रोफेसर रवि वर्मा, महाधिवक्ता, के. एन. भट्ट, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) अनीता शिनाय, जे. एम. गंगाधर, विश्रुति विजय, (सुश्री) नेहा सिंह, (सुश्री) के. वी. भारती उपाध्याय, मोहन वी. कतर्की, शैलेश मदियाल, भारद्वाज अय्यंगर, संजीव सेन, मुथु कुमार, विजय कुमार परदेसी, जगजीत सिंह छाबड़ा, के. वी. धनंजय, शेखर जी. देवास, वी. एन. रघुपति, एम. पी. श्रीकांत, पी. आर. रामाशेष, एम. जी. अनंता नारायण, जी. आर. मोहन, (सुश्री) प्रभा स्वामी, एस. एन. भट्ट, टी. वी. रतनम, शरणगौढ़ा पाटिल (मैसर्स एस. लीगल एसोसिएट्स की ओर से), सी. एम. अंगदी, रामेश्वर प्रसाद गोयल, बी. के. पाल और गुरुदत्त अंकोलेकर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक ने दिया ।

न्या. पटनायक – 2013 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 32858 में इजाजत दी जाती है ।

वे तथ्य जिनके परिणामस्वरूप संविधान न्यायपीठ को निर्देश किया गया :

2. कर्नाटक सरकार ने तारीख 19 जून, 1989 को एक सरकारी आदेश जारी किया जिसमें यह विहित किया गया था कि "पहली कक्षा से

चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी ।" तारीख 22 जून, 1989 को कर्नाटक सरकार ने एक शुद्धिपत्र जारी किया जिसके द्वारा तारीख 19 जून, 1989 के पूर्ववर्ती सरकारी आदेश में उपर्युक्त शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द प्रतिस्थापित किए गए थे :–

> "पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक जहां यह प्रत्याशा की जाती है कि सामान्य तौर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी ।"

तारीख 19 जून, 1989 और 22 जून, 1989 के आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पेरेंट्स एसोसिएशन** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में तारीख 8 दिसम्बर, 1993 के अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया था कि कर्नाटक सरकार के दोनों आदेश सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य हैं ।

3. इसके पश्चात्, कर्नाटक सरकार ने इस विषय से संबंधित सभी पूर्ववर्ती आदेशों को रद्द करते हुए प्राथमिक और उच्च विद्यालयों में शैक्षणिक वर्ष 1994-1995 से अपनाई जाने वाली भाषा नीति के संबंध में तारीख 29 अप्रैल, 1994 को एक नया आदेश जारी किया । तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश के, जिससे हमारा इस निर्देश में संबंध है, खंड 2 से खंड 8 इसमें इसके नीचे उद्धृत किए जाते हैं :–

> "2. सभी सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शैक्षणिक वर्ष 1994-95 से शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कन्नड़ होनी चाहिए ।
>
> 3. उन छात्रों को, जिन्हें शैक्षणिक वर्ष 1994-95 से पहली कक्षा में प्रवेश दिया गया है, मातृभाषा या कन्नड़ भाषा के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए ।
>
> 4. तथापि, विद्यालयों को शैक्षणिक वर्ष 1994-95 के दौरान दूसरी कक्षा से चौथी कक्षा तक के छात्रों को पूर्व-विद्यमान माध्यम से पढ़ाया जाना जारी रखने की अनुज्ञा प्रदान की जा सकती है ।
>
> 5. छात्रों को पांचवीं कक्षा से अपने इच्छानुसार अंग्रेजी या कोई अन्य भाषा में संक्रमण करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है ।
>
> 6. अंग्रेजी माध्यम के विद्यमान मान्यताप्राप्त विद्यालयों में केवल

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. 550.

ऐसे छात्रों को, जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी है, पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अंग्रेजी माध्यम में अध्ययन करने की अनुज्ञा प्रदान की जा सकती है ।

7. सरकार विद्यमान गैर-मान्यताप्राप्त विद्यालयों को ऊपर उल्लिखित पैरा 1 से पैरा 6 में उपदर्शित नीति के अनुसार नियमित करने पर विचार करेगी । ऐसे विद्यालयों के अनुरोध पर, जिन्होंने शिक्षा संहिता के उपबंधों और सरकार की वर्तमान नीति का अनुपालन किया है, लोक शिक्षा आयुक्त की मार्फत भेजी गई जिला पंचायत की रिपोर्ट के आधार पर विचार किया जाएगा ।

8. यह निदेश दिया जाता है कि ऐसे सभी अप्राधिकृत विद्यालय बन्द कर दिए जाएंगे जो उक्त शर्तों का अनुपालन नहीं करते हैं ।"

अतः, तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश के इन खंडों में यह उपबंध किया गया था कि सभी सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शैक्षणिक वर्ष 1994-1995 से शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कन्नड़ भाषा होगी और पांचवीं कक्षा से छात्रों को शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में बदलने की अनुज्ञा दी जा सकती है । तथापि, तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश में यह स्पष्ट किया गया था कि केवल उन छात्रों को, जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी है विद्यमान मान्यताप्राप्त अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अंग्रेजी माध्यम में अध्ययन करने की अनुज्ञा दी जा सकती है ।

4. तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश के उन खंडों से व्यथित होकर जिनमें यह विहित किया गया था कि सभी सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कन्नड़ भाषा ही होगी, एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स, कर्नाटक ने 1994 की रिट याचिका सं. 14363 फाइल की और अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी कि किसी विद्यालय में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क), अनुच्छेद 19(1)(छ), अनुच्छेद 26, अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30(1) के अधीन एक मूल अधिकार है और यह कि कर्नाटक सरकार के तारीख 29 अप्रैल, 1994 के आदेश के आक्षेपित खंड संविधान के अधिकारातीत हैं । दूसरी ओर, कर्नाटक राज्य और उसके अधिकारियों ने **इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पेरेंट्स एसोसिएशन**

बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया और यह दलील दी कि राज्य प्राथमिक शिक्षा को विनियमित करने वाली अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, नीति के रूप में यह विहित कर सकता है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा या कन्नड़ भाषा होगी । कर्नाटक राज्य ने यह भी दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 350क में राज्य पर यह कर्तव्य डाला गया है कि वह भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक चरण पर मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने की पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करे और कर्नाटक सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञों की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश में यह विहित किया है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा होगी ।

5. कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने रिट याचिका और अन्य सभी संसक्त रिट याचिकाओं की सुनवाई की और तारीख 2 जुलाई, 2008 के अपने सामान्य निर्णय में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "(1) शिक्षा का अधिकार एक मूल अधिकार है जो कि संविधान के अनुच्छेद 21 से उत्पन्न होने वाले जीवन के अधिकार का एक वर्ग है । अनुच्छेद 21-क के फलस्वरूप निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अधिकार छह से चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बालकों के लिए प्रत्याभूत मूल अधिकार है । शिक्षा के अधिकार में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार अंतर्निहित है । प्राथमिक विद्यालयों में भी शिक्षा का माध्यम चुनना माता-पिता और बालक का मूल अधिकार है ।
>
> (2) वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार भी है ।
>
> (3) शिक्षा देना एक उपजीविका है और इसलिए अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन कोई भी उपजीविका चलाने के अधिकार के अंतर्गत अपनी रुचि की किसी शिक्षा संस्था की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार भी है ।
>
> (4) भारत के संविधान के अनुच्छेद 26 के अधीन प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय को पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्था की स्थापना और पोषण

करने का अधिकार है जिसमें शिक्षा संस्था भी है । यह एक ऐसा अधिकार है जो बहुसंख्यक-वर्ग और अल्पसंख्यक-वर्ग के धार्मिक संप्रदायों को उपलब्ध है ।

(5) समाज के प्रत्येक वर्ग को, जिसकी अपनी सुभिन्न भाषा लिपि या संस्कृति है, उसे संरक्षित रखने का मूल अधिकार प्राप्त है । यह एक ऐसा अधिकार है जो कि संविधान के अनुच्छेद 29(1) के अधीन बहुसंख्यक-वर्ग और अल्पसंख्यक-वर्ग दोनों को प्रदत्त है ।

(6) संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार है ।

(7) अतः, प्रत्येक नागरिक, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय और धर्म और भाषा पर आधारित प्रत्येक अल्पसंख्यक-वर्ग को भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ), अनुच्छेद 26 और अनुच्छेद 30(1) के अधीन अपनी रुचि की शिक्षा संस्था की स्थापना, प्रशासन और पोषण करने का अधिकार है जिसमें शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार भी है ।

(8) जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 29(2) में कहा गया है, किसी भी नागरिक को केवल भाषा के आधार पर किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश देने से वंचित नहीं किया जाएगा ।

(9) ऐसे बालकों के लिए, जिनकी मातृभाषा कन्नड़ है, प्रथम भाषा के रूप में कन्नड़ भाषा लागू करने की सरकारी नीति विधिमान्य है । यह नीति भी कि ऐसे सभी बालक, जिनकी मातृभाषा कन्नड़ नहीं है, जो कि राज्य की शासकीय भाषा है, एक विषय के रूप में कन्नड़ भाषा का अध्ययन करेंगे, विधिमान्य है । सरकार की यह नीति कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा रखना, राज्य द्वारा चलाए जाने वाले या सहायताप्राप्त विद्यालयों की दशा में विधिमान्य और वैध है ।

(10) किन्तु अन्य सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालकों को प्राथमिक शिक्षा केवल मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा में प्राप्त करने के लिए बाध्य करने वाली सरकारी नीति भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ), अनुच्छेद 26 और अनुच्छेद 30(1) की अतिक्रमणकारी है ।'

उच्च न्यायालय ने तदनुसार रिट याचिकाएं मंजूर कर लीं और तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश के खंड 2, 3, 6 और 8 को अभिखंडित कर दिया जहां तक वे सरकार द्वारा चलाए जाने वाले या सहायताप्राप्त विद्यालयों से भिन्न विद्यालयों को लागू होते हैं किन्तु तारीख 29 अप्रैल, 1994 के शेष सरकारी आदेश को कायम रखा ।

6. कर्नाटक राज्य और लोक शिक्षा आयुक्त, बंगलौर ने उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के तारीख 2 जुलाई, 2008 के निर्णय से व्यथित होकर 2013 की सिविल अपील सं. 5166-5190 फाइल की हैं । उन पन्द्रह शिक्षाविदों ने भी, जिन्होंने यह दावा किया है कि उनकी भी यह इच्छा है कि कर्नाटक राज्य में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक प्राथमिक शिक्षा बालक की मातृभाषा या कन्नड़ भाषा में होनी चाहिए, यह घोषणा करने के लिए कि तारीख 29 अप्रैल, 1994 का सरकारी आदेश गैर-सहायताप्राप्त सरकारी मान्यताप्राप्त प्राथमिक विद्यालयों की बाबत सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य है और राज्य सरकार को तारीख 29 अप्रैल, 1994 का सरकारी आदेश लागू करने का निदेश देने के लिए परमादेश की रिट जारी करने के लिए 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 290 फाइल की है ।

7. चूंकि उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ का तारीख 2 जुलाई, 2008 का निर्णय एक वर्ष से अधिक समय से लागू नहीं किया गया था इसलिए उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 2009 की रिट अपील सं. 1682 और अन्य संसक्त मामलों में तारीख 3 जुलाई, 2009 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा कर्नाटक सरकार को उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के तारीख 2 जुलाई, 2008 के निर्णय का अनुपालन करने के लिए कहा गया और 2009 की रिट अपील सं. 1682 में तारीख 3 जुलाई, 2009 के उक्त आदेश से व्यथित होकर कर्नाटक सरकार के शिक्षा विभाग के विभिन्न अधिकारियों ने 2013 की सिविल अपील सं. 5191-5199 फाइल की हैं ।

8. कर्नाटक उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 1994 की रिट याचिका सं. 3044 में तारीख 22 जनवरी, 1996 के आदेश द्वारा कर्नाटक राज्य को यह निदेश दिया कि किसी संस्था को पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अंग्रेजी माध्यम में विद्यालय चलाने की अनुज्ञा दी जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को 1997 की रिट अपील सं. 2740 में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई किन्तु तारीख

21 फरवरी, 2012 को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह कथन करते हुए रिट अपील खारिज कर दी कि **एसोसिएटेड मेनेजमेंट आफ प्राइमरी एंड सेकेंडरी स्कूल्स इन कर्नाटक** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के तारीख 8 जुलाई, 2008 के आदेश पर इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत याचिका में रोक नहीं लगाई गई है । कर्नाटक राज्य ने 1997 की रिट अपील सं. 2740 में खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 21 फरवरी, 2012 के आदेश से व्यथित होकर 2013 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 32858 फाइल की है ।

संविधान पीठ को निर्देशित प्रश्न :

9. इन सभी मामलों की इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 5 जुलाई, 2013 को सुनवाई की गई थी, खंड न्यायपीठ ने एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा निम्नलिखित प्रश्न संविधान पीठ को विचार करने के लिए निर्देशित किए गए :–

> "(i) मातृभाषा से क्या अभिप्रेत है ? यदि यह उस भाषा के प्रति निर्देश है जिसमें बालक सहज होगा तो इसका निर्णय कौन करेगा ?
>
> (ii) क्या किसी छात्र या किसी माता-पिता या किसी नागरिक को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार है ?
>
> (iii) क्या किसी भी प्रकार से मातृभाषा अधिरोपित करने से संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 29 और 30 के अधीन मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ?
>
> (iv) क्या सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में सरकारी सहायताप्राप्त विद्यालय और प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय भी आते हैं ?
>
> (v) क्या राज्य संविधान के अनुच्छेद 350क के आधार पर भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को प्राथमिक विद्यालयों में केवल मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम चुनने के लिए बाध्य कर सकता है ?"

खंड न्यायपीठ ने तारीख 5 जुलाई, 2013 के अपने आदेश में यह मताभिव्यक्ति भी की कि संविधान पीठ ऐसे आनुषंगिक या प्रासंगिक प्रश्नों पर विचार कर सकती है जो मामलों की सुनवाई के अनुक्रम में उद्भूत हो

---

[1] आई. एल. आर. 2008 (3) कर्नाटक 2895.

सकते हैं और इसके अलावा यह निदेश दिया कि अन्य सभी संसक्त मामले, जिसमें याचिकाएं/आवेदन भी हैं, संविधान पीठ के समक्ष रखे जाएंगे ।

कर्नाटक राज्य की ओर से विद्वान् काउन्सेल की दलीलें :

10. संविधान पीठ के समक्ष सुनवाई के समय कर्नाटक राज्य की ओर से विद्वान् महाधिवक्ता प्रोफेसर रवि कुमार वर्मा ने यह दलील दी कि राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955 ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 773 से 777 में अगस्त, 1949 में आयोजित प्रोविन्शियल एजूकेशन मिनिस्टर्स कांफ्रेंस में अंगीकार किए गए प्रस्ताव के प्रति निर्देश किया है कि कनिष्ठ प्राथमिक प्रक्रम पर शिक्षा और परीक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा होनी चाहिए और यह कि बालक की मातृभाषा वह भाषा होगी जो माता-पिता या संरक्षक द्वारा मातृभाषा के रूप में घोषित की जाएगी । उसने यह दलील दी कि 1949 में आयोजित प्रोविन्शियल एजूकेशन मिनिस्टर्स कांफ्रेंस में अंगीकार किए गए इस प्रस्ताव का भारत सरकार द्वारा अनुमोदन किया गया है और अब वह राज्य सरकारों के लिए अपने-अपने राज्यों में विद्यालय जाने वाले बालकों की शिक्षा के लिए व्यवस्था करने में एक दिशानिर्देश के रूप में काम करता है । उसने यह दलील दी कि राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955 की रिपोर्ट के पश्चात् संविधान में अनुच्छेद 350क पुरःस्थापित किया गया है जिसमें यह उपबंध है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण का यह प्रयास होगा कि भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर उनकी मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था की जाए ।

11. विद्वान् महाधिवक्ता ने यह दलील दी कि इस पृष्ठभूमि में कर्नाटक सरकार द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 1994 वाला आदेश पारित किया गया था जिसमें यह विहित किया गया था कि सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त सभी प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक वर्ष 1994-95 से पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कन्नड़ भाषा होगी । उसने यह दलील देने के लिए कि **इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पेरेंट्स एसोसिएशन** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय को उद्धृत किया कि किसी बालक द्वारा बुनियादी ज्ञान उसकी मातृभाषा के माध्यम से अर्जित किया जा सकता है और यह कि राज्य सरकार को ऐसी नीति विहित करने की शक्ति प्राप्त है जिसमें यह विहित हो कि कर्नाटक में सभी मान्यताप्राप्त सरकारी विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक

अध्ययन करने वाले बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम कन्नड़ भाषा या उसकी मातृभाषा होगी ।

12. विद्वान् महाधिवक्ता ने आगे यह दलील दी कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं था कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन प्रत्याभूत वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार भी आता है और यह कि इस अधिकार का प्रयोग करते हुए माता-पिता और बालक का यह मूल अधिकार है कि वह प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम का चयन करे । उसने यह दलील दी कि इसी प्रकार उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना भी सही नहीं था कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) और अनुच्छेद 26 के अधीन किसी शिक्षा संस्था की स्थापना और प्रशासन के अधिकार में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार भी आएगा । उसने यह दलील दी कि यदि राज्य किसी दशा में नीति संबंधी यह विनिश्चय करता है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों के लिए उनकी मातृभाषा शिक्षा का माध्यम होगी तो राज्य सरकार का ऐसा नीति संबंधी विनिश्चय राज्य की विनियामक शक्तियों के भीतर होगा । उसने **गुजरात विश्वविद्यालय और एक अन्य** बनाम **श्री कृष्ण रंगनाथ मुधोलकर और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया जिसमें इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह मत अपनाया है कि राज्य विधान-मंडल को प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा के संस्थानों में शिक्षा के माध्यम के संबंध में विधान बनाने की विनियामक शक्ति प्राप्त है । उसने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 162 के अधीन राज्य सरकार के पास उसकी विधायी शक्तियों के साथ सहविस्तारी कार्यपालक शक्तियां भी हैं और इसलिए तारीख 29 अप्रैल, 1994 का वह सरकारी आदेश, जिसमें यह विहित किया गया है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले सभी बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम उनकी मातृभाषा होगी, राज्य सरकार की शक्तियों के भीतर ही था । उसने यह तर्क दिया कि भले ही यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि बालकों और माता-पिता को पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार प्राप्त है या उन नागरिकों को, जिन्होंने विद्यालय स्थापित किए हैं, संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन शिक्षा का ऐसा माध्यम चुनने का मूल अधिकार है

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 703.

जिसमें उनके विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालकों को शिक्षा प्रदान की जाएगी, राज्य अपनी विनियामक शक्तियों के आधार पर उनके अधिकार को निर्बंधित कर सकेगा और यह विहित कर सकेगा कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम उनकी मातृभाषा होगी ।

13. इसके आगे विद्वान् महाधिवक्ता ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय का पुनः यह निष्कर्ष निकालना भी सही नहीं था कि सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालकों को केवल उनकी मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य करने वाली सरकारी नीति से संविधान के अनुच्छेद 30(1) का अतिक्रमण होता है । उसने यह दलील दी कि जहां तक राज्य यह अनुज्ञात करता है कि शिक्षा का माध्यम वही होना चाहिए जो कि उस अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा है, जिसने शिक्षा संस्था स्थापित की है, वहां तक संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) के अधीन मूल अधिकारों का अतिक्रमण नहीं होता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) का तात्पर्य प्रत्येक समुदाय की भाषा का, जिसमें भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग की भाषा भी है, संवर्धन करना है । उसने **मुम्बई राज्य** बनाम **मुम्बई शिक्षा सोसाइटी और अन्य**[1] वाले निर्णय को उद्धृत किया जिसमें इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग को, जैसे कि आंग्ल-भारतीय समुदाय, जो कि अन्य बातों के साथ-साथ धर्म और भाषा पर आधारित है, अनुच्छेद 29(1) के अधीन अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को संरक्षित रखने का मूल अधिकार प्राप्त है और अनुच्छेद 30(1) के अधीन अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार है और इसलिए ऐसे मूल अधिकार में उनके अपने समुदाय के बालकों को उनकी अपनी संस्था में उनकी अपनी भाषा में शिक्षा देने का अधिकार विवक्षित होना चाहिए । उसने **डी. ए. वी. कालेज और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] वाले निर्णय को भी उद्धृत किया जिसमें इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भाषाई राज्यों का प्रयोजन और उद्देश्य उस क्षेत्र के लोगों को शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उस क्षेत्र की भाषा में विकास करने के लिए बृहत्तर सुविधा प्रदान करना है किन्तु जबकि

---

[1] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 561.

[2] (1971) 2 एस. सी. सी. 269.

राज्य या विश्वविद्यालय को बहुसंख्यक-वर्ग को प्रादेशिक शिक्षा-माध्यम में शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का पूरा अधिकार है, फिर भी यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 30 तक में अंतर्विष्ट निर्बंधनों के अध्यधीन है और तदनुसार न तो विश्वविद्यालय और न ही राज्य ऐसी भाषा और लिपि के शिक्षा माध्यम में शिक्षा प्रदान कर सकेगा जिससे नागरिकों के किसी वर्ग की भाषा और लिपि को दबाया जाता है । उसके अनुसार, संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) के अधीन आने वाले अधिकारों पर कर्नाटक सरकार के तारीख 29 अप्रैल, 1994 के आदेश द्वारा प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि उसमें यह विहित किया गया है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक के छात्रों को बालक की मातृभाषा के शिक्षा माध्यम में शिक्षा प्रदान की जाएगी और बालकों की मातृभाषा उनके भाषाई समुदाय की भाषा से भिन्न कोई अन्य भाषा नहीं होगी ।

14. विद्वान् महाधिवक्ता ने आगे यह दलील दी कि इस न्यायालय ने **ऊषा मेहता और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्य संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन अधिकार का उपभोग करने वाली अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं के मामले में भी राज्य और राष्ट्र के व्यापक हितों को संरक्षित करने के लिए युक्तियुक्त विनियम अधिरोपित कर सकता है और अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने में प्रयोग की जा सकने वाली 'रुचि' राज्य द्वारा अधिरोपित ऐसे युक्तियुक्त विनियमों के अध्यधीन है किन्तु राज्य को विनियम अधिरोपित करते समय इस बात की सतर्कता बरतनी होगी कि उन संस्थाओं का अल्पसंख्यक स्वरूप विनष्ट न हो । उसने यह दलील दी कि तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश से, जिसके द्वारा यह उपबंध किया गया है कि प्राथमिक विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों की शिक्षा का माध्यम बालकों की मातृभाषा होगी, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन संरक्षित संस्थाओं का अल्पसंख्यक स्वरूप किसी भी प्रकार से विनष्ट नहीं होता है ।

15. विद्वान् महाधिवक्ता ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कि तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश से संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) और अनुच्छेद 30(1) के अधीन मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है, **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य**

---

[1] (2004) 6 एस. सी. सी. 264.

बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है । उसने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत वाले निर्णय के कुछ पैराओं की अवेक्षा नहीं की है । उसने उपर्युक्त बहुमत वाले निर्णय के पैरा 54 के प्रति निर्देश किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) और अनुच्छेद 26(क) के अधीन धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना करने और उनका पोषण करने का अधिकार राज्य द्वारा शैक्षिक स्तर इत्यादि बनाए रखने के लिए बनाए गए विनियमों के अध्यधीन है । उसने बहुमत वाले निर्णय के पैरा 115 के प्रति निर्देश किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों का अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार आत्यांतिक नहीं है और यह कि ऐसी संस्थाओं को शैक्षिक स्तर इत्यादि विनियमित करने वाले कानूनी अध्युपायों का पालन करना होता है । उसने यह दलील दी कि तथापि, **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) में बहुमत वाले निर्णय के पैरा 122 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इन विनियमों को युक्तिसंगतता की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए । उसने यह दलील दी कि तारीख 29 अप्रैल, 1994 का सरकारी आदेश, जिसमें यह विहित किया गया है कि कर्नाटक राज्य में प्राथमिक विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले समस्त बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम बालकों की मातृभाषा होगी, एक विनियामक अध्युपाय है और वह युक्तिसंगतता की कसौटी पर खरा उतरता है ।

16. विद्वान् महाधिवक्ता ने अंत में यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 21क का शीर्षक "शिक्षा का अधिकार" है और इसमें यह उपबंध है कि राज्य छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का ऐसी रीति में, जो राज्य विधि द्वारा, अवधारित करे, उपबंध करेगा । उसने यह तर्क दिया कि इस प्रकार अनुच्छेद 21क शिक्षा के अधिकार का एकमात्र निक्षेपक है और कोई भी नागरिक यह दलील देने के लिए किसी अन्य मूल अधिकार जैसे अनुच्छेद 19(1)(क) या अनुच्छेद 21 का अवलंब लेने के लिए स्वतंत्र नहीं है कि

---

[1] (2002) 8 एस. सी. सी. 481.

उसे अपनी रुचि के शिक्षा माध्यम में शिक्षा दिए जाने का अधिकार प्राप्त है । उसने यह दलील दी कि संसद् ने संविधान के अनुच्छेद 21क के अधीन निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 बनाया है और इस अधिनियम की धारा 29(2)(च) में यह उपबंध है कि शिक्षा का माध्यम, यथासाध्य, बालक की मातृभाषा होगी । उसने यह दलील दी कि इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं था कि शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन शिक्षा के अधिकार में अंतर्निहित है ।

उन प्रत्यर्थियों की ओर से दी गई दलीलें, जो तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश का समर्थन करते हैं :

17. 2013 की सिविल अपील सं. 5166 में प्रत्यर्थी सं. 2, 5, 6, 7, 9, 10, 11, 15, 17 और 18 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री के. एन. भट्ट ने यह दलील दी कि मातृभाषा वह भाषा होती है जिसमें बालक अत्यधिक सहज होता है । उसने **ऊषा मेहता और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले निर्णय को उद्धृत किया जिसमें इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित और संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन संरक्षित संस्थाओं के संबंध में भी राज्य और राष्ट्र के व्यापक हितों में युक्तियुक्त विनियम अधिरोपित कर सकता है और संविधान के अनुच्छेद 30(1) में 'रुचि' शब्द राज्य द्वारा अधिरोपित इन विनियमों के अध्यधीन है । उसने यह दलील दी कि राज्य को केवल यह सतर्कता बरतनी होगी कि इन विनियमों को अधिरोपित करने से संस्थाओं का अल्पसंख्यक स्वरूप ही विनष्ट न हो जाए । उसने यह दलील दी कि तदनुसार यदि राज्य सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 162 के अधीन तारीख 29 अप्रैल, 1994 का आदेश जारी किया है जिसमें यह विहित किया गया है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम उनकी मातृभाषा होगी, तो चूंकि ऐसा आदेश विनियामक प्रकृति का है और इससे संस्थाओं के अल्पसंख्यक स्वरूप पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है इसलिए यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करता है । उसने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही नहीं है कि तारीख 29 अप्रैल, 1994 का सरकारी आदेश, जहां तक वह अल्पसंख्यक-वर्ग की संस्थाओं को पहली कक्षा से

चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम अंगीकार करने के लिए बाध्य करता है, संविधान के अनुच्छेद 30 के अधीन प्राप्त अधिकार का अतिक्रमणकारी है ।

18. श्री भट्ट ने आगे यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में सभी नागरिकों को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार प्रत्याभूत किया गया है और इस अधिकार पर राज्य केवल वे निर्बंधन अधिरोपित कर सकता है जो संविधान के अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित हैं । उसने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 19(2) के पठन से यह दर्शित होगा कि उसमें राज्य को भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय-अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने की शक्ति प्रदान की गई है किन्तु उसमें राज्य को सर्वसाधारण के हित में युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने की शक्ति प्रदान नहीं की गई है । उसने प्रबल रूप से यह तर्क दिया कि यदि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार का इस प्रकार निर्वचन किया जाता है जिससे कि उसके अंतर्गत शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार भी आ जाए, तो राज्य को राज्य या राष्ट्र के व्यापक हितों में शिक्षा का माध्यम चुनने के इस अधिकार पर कोई युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने की कोई शक्ति नहीं होगी और न्यायालय को ऐसा निर्वचन करने से बचना चाहिए । उसने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार और संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अधीन भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय-अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने की शक्ति के तर्काधार को **सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार और अन्य** बनाम **क्रिकेट एसोसिएशन आफ बंगाल और अन्य**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति पी. बी. सावंत और न्यायमूर्ति बी. पी. जीवन रेड्डी के निर्णयों में स्पष्ट किया गया है । उसने दलील दी कि इन गंभीर परिणामों को ध्यान में रखते हुए जो उद्भूत हो सकते हैं, यदि हम यह मत अपनाते हैं कि वाक्-स्वातंत्र्य

---

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 161.

और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार भी आता है तो हमें इस प्रश्न को अनिर्णीत छोड़ देना चाहिए यदि इस मामले में इसे विनिश्चित करना आवश्यक नहीं है ।

उन प्रत्यर्थियों की ओर से दी गई दलीलें, जिन्होंने तारीख 29 अप्रैल, 1994 के सरकारी आदेश को चुनौती दी है :

19. 2013 की सिविल अपील सं. 5166 में प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री मोहन वी. कतर्की ने यह दलील दी कि राज्य को किसी शिक्षा संस्था को मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अंगीकार करने के लिए बाध्य करने की कोई शक्ति नहीं है । उसने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 350क में प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण पर भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर उनकी मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करने का केवल कर्तव्य डाला गया है और उसमें संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार और विद्यालय की स्थापना और प्रशासन करने के अधिकार में हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं दी गई है ।

20. श्री कतर्की ने यह दलील दी कि राज्य द्वारा **इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पेरेंट्स एसोसिएशन** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेना भ्रामक है जिसमें तारीख 22 जून, 1989 के पूर्ववर्ती सरकारी आदेश को कायम रखा गया था जिसमें मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम विहित किया गया था क्योंकि उपर्युक्त विनिश्चय में राज्य सरकार के तारीख 22 जून, 1989 के आदेश को कायम रखने के लिए इस न्यायालय द्वारा जो कारण दिया गया है वह यह है कि उस आदेश में बाध्यता का तत्व नहीं था । उसने यह दलील दी कि दूसरी ओर, तारीख 29 अप्रैल, 1994 के आदेश में सभी सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों के लिए, जिनमें प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय भी हैं, पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अंगीकार करना अनिवार्य बनाया गया है ।

21. श्री कतर्की ने यह दलील दी कि इस न्यायालय ने **उनी कृष्णन्, जे. पी. और अन्य** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह

---

[1] (1993) 1 एस. सी. सी. 645.

अभिनिर्धारित किया है कि चौदह वर्ष की आयु तक बालक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन जीवन के अधिकार का भाग है और इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालना सही था कि बालक की रुचि के शिक्षा माध्यम में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन आने वाले अधिकार का ही एक भाग है । उसने यह दलील दी कि इसी प्रकार वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के अंतर्गत शिक्षा का वह माध्यम चुनने का अधिकार भी आता है जिसमें बालक को शिक्षा दी जानी है और इसलिए उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना सही था कि किसी बालक को किसी विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से, जैसे उसकी मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए बाध्य करना संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन उसके अधिकार का अतिक्रमणकारी है ।

22. श्री कतर्की ने आगे यह दलील दी कि संविधान का अनुच्छेद 30(1) धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार प्रदत्त करता है और "रुचि" शब्द से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि राज्य किसी धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग द्वारा स्थापित किसी संस्था को अपनी संस्था में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक के बालकों को उनकी मातृभाषा में ही शिक्षा देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है । उसने इस निवेदन के समर्थन में **केरल एजूकेशन बिल, 1957**[1], **रेवेरेंड फादर डब्ल्यू. प्रूस्ट और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[2], **डी. ए. वी. कालेज और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** (उपर्युक्त). **डी. ए. वी. कालेज भटिंडा और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[3] और **अहमदाबाद सेंट ज़ेवियर सोसाइटी और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया । उसने यह दलील दी कि ऐसी शिक्षा संस्थाओं को भी जो किसी धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग द्वारा स्थापित नहीं की गई हैं, संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) और अनुच्छेद 26 के अधीन स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है और इस अधिकार का प्रयोग करते हुए उन्हें शिक्षा का ऐसा माध्यम चुनने का अधिकार है जिसमें वे

---

[1] [1959] एस. सी. आर. 995.

[2] [1969] 2 एस. सी. आर. 73.

[3] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1731.

[4] (1974) 1 एस. सी. सी. 717.

अपने छात्रों को शिक्षा देना चाहते हैं । उसने इस प्रतिपादना के समर्थन में **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) और **पी. ए. इनामदार और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामलों में बहुमत वाले निर्णयों का अवलंब लिया ।

23. 2013 की सिविल अपील सं. 5186 में प्रत्यर्थी सं. 10 और 11 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री जी. आर. मोहन ने श्री कतर्की के उपर्युक्त निवेदनों को अंगीकार करते हुए आगे यह दलील दी कि संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों द्वारा, जिसमें भारत भी शामिल है, अंगीकृत मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 26(3) में यह उपबंध है कि शिक्षा के उस प्रकार को चुनना माता-पिता का पूर्व अधिकार है, जो कि उनके बालकों को दी जाएगी । कुछ प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल श्री के. वी. धनंजय ने भी कतर्की के निवेदनों को अंगीकार किया ।

हमें निर्देशित पांच प्रश्नों के संबंध में हमारे उत्तर :

24. प्रश्न सं. (i) : मातृभाषा से क्या अभिप्रेत है ? यदि यह उस भाषा के प्रति निर्देश है जिसमें बालक सहज होगा तो इसका निर्णय कौन करेगा ?

चूंकि यह प्रश्न हमारे समक्ष हमारे संविधान के संदर्भ में निर्देशित किया गया है इसलिए हमें इस प्रश्न का उत्तर संविधान में यथा-प्रयुक्त "मातृभाषा" अभिव्यक्ति का निर्वचन करके देना होगा । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संविधान केवल एक ऐसा साधारण अधिनियम नहीं है जिसका न्यायालय को विधि की घोषणा करने के प्रयोजनार्थ निर्वचन करना है बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अधीन विधियां बनाई जानी हैं । जैसा कि **ए. के. गोपालन** बनाम **मद्रास राज्य**[2] वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति कानिया ने मत व्यक्त किया है :–

> "यद्यपि हमें संविधान के शब्दों का, निर्वचन के उन्हीं सिद्धांतों के आधार पर निर्वचन करना है जैसा कि हम उन्हें किसी साधारण विधि को लागू करते हैं तथापि, निर्वचन के यही सिद्धांत हमें उस अधिनियम के स्वरूप और उसकी परिधि को ध्यान में रखने के लिए

---

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 537.

[2] ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 27.

> बाध्य करते हैं जिसका हम निर्वचन कर रहे हैं – यह स्मरण रखना कि यह एक संविधान है, एक ऐसी प्रक्रिया जिसके अधीन विधियां बनाई जानी हैं न कि मात्र कोई ऐसा अधिनियम जो यह घोषणा करता है कि विधि क्या होनी चाहिए ।"

संविधान में एकमात्र उपबंध जिसमें "मातृभाषा" अभिव्यक्ति आती है, अनुच्छेद 350क है । अतः, हमें यह अवश्य ही समझना चाहिए कि संविधान में अनुच्छेद 350क क्यों अंतःस्थापित किया गया था । राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955 ने राज्यों को भाषाई आधार पर पुनर्गठित करने के लिए सिफारिशें की थीं । राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955 ने अपनी रिपोर्ट के भाग 4 का अध्याय 1 "भाषाई वर्गों के लिए सुरक्षोपाय" को समर्पित किया और यह सिफारिश की है कि राज्यों के भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों को मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए । राज्य पुनर्गठन आयोग ने इस सिफारिश के समर्थन में अगस्त, 1949 में आयोजित प्रान्तीय शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में अंगीकृत प्रस्ताव का अवलंब लिया है जिसे भारत सरकार द्वारा अनुमोदित किया गया था और जो कि राज्य सरकारों के लिए विद्यालय जाने वाले ऐसे बालकों के लिए जिनकी मातृभाषा प्रादेशिक भाषा से भिन्न है, शिक्षा देने की व्यवस्था करने में मार्गदर्शक के रूप में काम करता रहा है । इस प्रस्ताव को इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "कनिष्ठ बुनियादी स्तर पर शिक्षा और परीक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा होनी चाहिए और जहां मातृभाषा प्रादेशिक या राज्य की भाषा से भिन्न है वहां कम से कम एक अध्यापक की नियुक्ति करके मातृभाषा में शिक्षा देने के प्रबंध किए जाने चाहिएं बशर्ते पूरे विद्यालय में उस भाषा को बोलने वाले 40 छात्र से कम न हों या किसी एक कक्षा में ऐसे 10 से कम छात्र न हों । मातृभाषा वह भाषा होगी जो माता-पिता या संरक्षक द्वारा मातृभाषा के रूप में घोषित की जाएगी । प्रादेशिक भाषा या राज्य की भाषा, जहां वह मातृभाषा से भिन्न है, तीसरी कक्षा से पहले और कनिष्ठ बुनियादी स्तर की समाप्ति के बाद लागू नहीं की जानी चाहिए । माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम का प्रादेशिक भाषा में परिवर्तन सुकर बनाने के लिए बालकों को कनिष्ठ बुनियादी स्तर के पश्चात् प्रथम दो वर्षों के लिए प्रश्नों का उत्तर उनकी मातृभाषा में देने का विकल्प दिया जाना चाहिए ।"

अगस्त, 1949 में आयोजित प्रान्तीय शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में अंगीकृत उपर्युक्त प्रस्ताव से और राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955 की सिफारिशों से

यह स्पष्ट होता है कि आयोग भारत में राज्यों के पुनर्गठन के आधार के रूप में भाषा की सिफारिश करते समय यह सुनिश्चित करना चाहता था कि भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के उन बालकों को, जिनकी भाषा राज्य की भाषा से भिन्न है, प्राथमिक स्तर पर उनकी मातृभाषा में शिक्षा दी जाए । अगस्त, 1949 में आयोजित प्रान्तीय शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में अंगीकृत ऊपर उद्धृत प्रस्ताव में यह भी स्पष्ट किया गया था कि मातृभाषा वह भाषा होगी जो माता-पिता या संरक्षक द्वारा मातृभाषा के रूप में घोषित की जाएगी ।

25. राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955 की सिफारिशों के पश्चात् संविधान में संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 350क अंतःस्थापित किया गया था । अनुच्छेद 350क निम्न प्रकार है :–

> "प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है ।"

संविधान के अनुच्छेद 350क के पठन मात्र से ही यह दर्शित होगा कि यह प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी पर अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का कर्तव्य डालता है । अतः, अनुच्छेद 350क में 'मातृभाषा' अभिव्यक्ति से किसी विशिष्ट राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग की मातृभाषा अभिप्रेत है और इससे स्पष्ट रूप से उस विशिष्ट भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग की भाषा अभिप्रेत होगी ।

26. अतः, संविधान के संदर्भ में मातृभाषा से किसी राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग की भाषा अभिप्रेत होगी और बालक के माता-पिता या संरक्षक ही यह विनिश्चय करेंगे कि बालक की मातृभाषा क्या है । संविधान में कहीं भी यह उपबंध नहीं किया गया है कि मातृभाषा वह भाषा होती है जिसमें बालक सहज महसूस करता है और जबकि "मातृभाषा" का यह अर्थ अभिव्यक्ति का संभावित अर्थ हो सकता है किन्तु संविधान के अनुच्छेद 350क में या संविधान के किसी अन्य उपबंध में मातृभाषा का यह अर्थ नहीं है और इसलिए हम न तो राज्य की शक्ति को विस्तारित कर सकते हैं और न ही यह कहकर मूल अधिकार को निर्बंधित कर सकते हैं कि

मातृभाषा वह भाषा होती है जिसमें बालक सहज महसूस करता है । हम तदनुसार प्रश्न सं. (i) का उत्तर देते हैं ।

27. प्रश्न सं. (ii) क्या किसी छात्र या किसी माता-पिता या किसी नागरिक को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार है ?

उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि माता-पिता या किसी बालक को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के भागस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार है और शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन शिक्षा के अधिकार में भी अंतर्निहित है । हमें यह विनिश्चित करना है कि क्या उच्च न्यायालय के ये निष्कर्ष कि माता-पिता या किसी बालक को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के भागस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार है और संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम चुनने का भी अधिकार है, सही हैं अथवा नहीं ।

28. संविधान के अनुच्छेद 19 का शीर्षक "स्वातंत्र्य-अधिकार" है और उसमें यह कहा गया है कि सभी नागरिकों को, –

(क) वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का,

(ख) शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का,

(ग) संगम या संघ बनाने का,

(घ) भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का,

(ङ) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, और

(च) * * *

(छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का,

अधिकार होगा ।

संविधान के अनुच्छेद 19 में 'स्वातंत्र्य' शब्द से राज्य द्वारा नियंत्रण का न होना अभिप्रेत है और अनुच्छेद 19(1) में यह उपबंध किया गया है कि

राज्य संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) से खंड (6) में विनिर्दिष्ट मामलों के सिवाय अनुच्छेद 19(1) के उपखंड (क), (ख), (ग), (घ), (ङ) और (छ) में उल्लिखित मामलों में नागरिक पर नियंत्रण अधिरोपित नहीं करेगा । अतः, अनुच्छेद 19 के खंड (1) में विनिर्दिष्ट सभी मामलों में नागरिक को अनुच्छेद 19 के खंड (2) से खंड (6) में दिए गए निर्बंधनों के अधीन रहते हुए ही चुनने की स्वाधीनता है ।

29. नागरिकों को यह स्वाधीनता देने का एक कारण जान स्टूअर्ट मिल द्वारा लिखित प्रसिद्ध निबंध "आन लिबर्टी" में अंतर्विष्ट है । उसने निम्न प्रकार लिखा है :–

> "द्वितीयतः, इस सिद्धांत में रुचि और लक्ष्यों की स्वाधीनता ; हमें अपने चरित्र के उपयुक्त अपने जीवन की योजना तैयार करने की स्वाधीनता ; जैसा हम पसन्द करें वैसा करने की स्वाधीनता अपेक्षित है जब तक कि जो कुछ हम करते हैं उससे उन्हें नुकसान नहीं पहुंचता भले ही वे हमारे आचरण को मूर्खतापूर्ण, अनुचित या गलत समझते हों ।"

अतः मिल के अनुसार प्रत्येक व्यष्टि को कुछ विषयों में जैसे उसके अपने चरित्र के अनुसार अपने जीवन की योजना तैयार करने और किसी अड़चन के बिना अपनी पसन्द के अनुसार काम करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए भले ही वह ऐसे मामलों में मूर्खतापूर्ण कार्य करने का विनिश्चय करता है तो भी समाज या उसकी ओर से राज्य को व्यष्टि की रुचि में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । हेराल्ड जे. लास्की की भी, जो राज्य के हस्तक्षेप की सीमाओं को परिभाषित करने वाले मिल के प्रयासों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे, यह राय थी कि कुछ मामलों में व्यष्टि को रुचि की स्वतंत्रता होनी चाहिए । हेराल्ड जे. लास्की कृत "ग्रामर आफ पालिटिक्स" से एक लेखांश उद्धृत किया जा सकता है :–

> "मेरे स्वातंत्र्य मेरी रुचि के वे मार्ग हैं जिनके माध्यम से मैं जैसा उपयुक्त समझता हूं वैसे ही स्वयं अपने आचरण के मार्ग का निर्माण कर सकूं और आम स्वतंत्रता का उपभोग करने के लिए जो स्वातंत्र्य मेरे पास होने चाहिएं वे ऐसे हैं जिनकी समष्टि ऐसे पथ की संरचना करेगी जिसकी मार्फत मेरा सर्वोत्तम व्यक्तित्व उसे प्राप्त करने में समर्थ है । इसका अर्थ यह नहीं है कि वह प्राप्त कर लिया जाएगा । इसका केवल यह अर्थ है कि मैं अकेला उसे सर्वोत्तम बना

सकता हूं और यह कि उन स्वातंत्र्यों के बिना मेरे पास निर्माण के साधन नहीं हैं ।'

किसी व्यष्टि के लिए स्वयं अपने तरीके से अपने व्यक्तित्व का विकास करने हेतु वाक् और अभिव्यक्ति के मामले में स्वातंत्र्य या विकल्प पूर्णतः आवश्यक है और यदि यह एकमात्र कारण नहीं तो यह एक कारण अवश्य है कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन प्रत्येक नागरिक को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार प्रत्याभूत किया गया है ।

30. इस न्यायालय ने समय-समय पर निरन्तर अत्यंत व्यापक निर्वचन करके संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन प्रत्याभूत वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार की परिधि को विस्तारित किया है । **रमेश थापर** बनाम **मद्रास राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य में विचारों का प्रचार करने की स्वतंत्रता भी आती है जो कि परिचालन की स्वतंत्रता द्वारा सुनिश्चित है और **साकल पेपर्स (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के साथ अपने विचारों, राय और मतों को प्रकाशित और परिचालित करने का अधिकार भी जुड़ा है । **बैनेट कोलमेन एंड कंपनी** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रेस की स्वतंत्रता से नागरिकों को अपने विचारों को बोलने, प्रकाशित और अभिव्यक्त करने का अधिकार और लोगों का पढ़ने का अधिकार भी अभिप्रेत है और **आडिसी कम्यूनिकेशन्स (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **लोकविद्यान संगठन**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अंतर्गत नागरिकों का दूरदर्शन पर फिल्म प्रदर्शित करने का अधिकार भी आता है ।

31. इस न्यायालय ने **सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस प्रश्न की भी परीक्षा की कि क्या किसी नागरिक द्वारा जानकारी या शिक्षा प्राप्त करना वाक्-स्वातंत्र्य

---

[1] ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 124.
[2] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 305.
[3] (1972) 2 एस. सी. सी. 788.
[4] (1988) 3 एस. सी. सी. 410.

और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य संबंधी उसके अधिकार का एक भाग था और यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के अंतर्गत न केवल जानकारी देने का अधिकार आएगा बल्कि जानकारी प्राप्त करने का अधिकार भी आएगा । न्यायमूर्ति पी. बी. सावंत ने अपनी राय के अनुसार यह मत व्यक्त किया कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अंतर्गत शिक्षा प्राप्त करने, जानकारी प्राप्त करने और ग्रहण करने का अधिकार भी आता है और शिक्षा, जानकारी दिए जाने और ग्रहण किए जाने का अधिकार भी आता है । इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों के अनुरूप हमारा यह मत है कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के अंतर्गत विद्यालय के प्राथमिक स्तर पर बालक की रुचि की भाषा में शिक्षा दिए जाने की बालक की स्वतंत्रता भी आती है और राज्य ऐसी रुचि पर मात्र इस कारण निर्बंधन अधिरोपित नहीं कर सकता कि यदि बालक को विद्यालय के प्राथमिक स्तर पर उसकी मातृभाषा में पढ़ाया जाए तो यह उसके लिए अधिक उपयोगी होगा । अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि बालक या उसकी ओर से उसके माता-पिता या संरक्षक को शिक्षा के उस माध्यम के संबंध में, जिसमें वह विद्यालय में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्त करना चाहेगा, रुचि की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है । हम विद्वान् महाधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के अंतर्गत बालक या उसकी ओर से उसके माता-पिता या संरक्षक का प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार नहीं आता है ।

32. हम श्री भट्ट की इस दलील को भी स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि यदि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि उसके अंतर्गत प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार आता है तो राज्य को अनुच्छेद 19 के खंड (2) के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार पर भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में के सिवाय युक्तियुक्त निर्बंधन लगाने की कोई शक्ति नहीं होगी । हमारी राय में, संविधान

निर्माताओं का आशय राज्य को संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) में उल्लिखित प्रयोजनों के सिवाय किसी नागरिक के वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के मूल्यवान अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने के लिए सशक्त करना नहीं था क्योंकि उन्होंने यह सोचा कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर अन्य निर्बंधन अधिरोपित करना व्यष्टिक नागरिक के विकास और व्यक्तित्व के लिए हानिप्रद होगा और राष्ट्र के व्यापक हित में नहीं होगा । **रमेश थापर** बनाम **मद्रास राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायाधीशों के बहुमत की ओर से निर्णय सुनाते हुए न्यायमूर्ति पतंजलि शास्त्री ने इन शब्दों में मत व्यक्त किया :–

> "अतः, निर्बाध वाक् और अभिव्यक्ति के अधिकार पर अनुज्ञेय विधायी न्यूनीकरण की अत्यंत संकीर्ण और कठोर सीमाएं निर्धारित की गई हैं और यह इस अनुभूति के कारण निःसंदिग्ध था कि वाक्-स्वातंत्र्य और प्रेस की स्वतंत्रता समस्त लोकतांत्रिक संगठनों की आधारशिला पर निर्भर करती है क्योंकि निर्बाध राजनैतिक विचार-विमर्श किए बिना कोई भी लोक शिक्षा जो कि लोकप्रिय सरकार की प्रणालियों के समुचित कार्यकरण के लिए काफी आवश्यक है, संभव नहीं है । इतनी विस्तीर्ण स्वतंत्रता में उसके दुरुपयोग के जोखिम अंतर्वलित हो सकते हैं । किन्तु संविधान निर्माताओं ने मेडिसन के, जिसकी फैडरल संविधान का प्रथम संशोधन तैयार करने में प्रमुख भावना थी, इन विचारों पर अवश्य ही चिन्तन किया होगा कि यह बेहतर होगा उसकी कुछ हानिकारक शाखाओं को उनके आनन्दमय विकास के लिए छोड़ दिया जाए बजाय इसके कि उनको काटने से उन शाखाओं की ताकत को क्षति पहुंचाई जाए जो उचित फल प्रदान कर रही हैं । [नियर **बनाम** मिन्नेसोटा (283 यू. एस. 607 पृ. 717-18) में उद्धृत]"

अतः, जब हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य में किसी बालक का अपनी रुचि के शिक्षा-माध्यम में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी शामिल होगा तो इस अधिकार की अनुज्ञेय सीमाएं केवल वे होंगी जो संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) के अंतर्गत आती हैं और हम किसी बालक के ऐसे अधिकार को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार से केवल इस कारण अलग नहीं कर सकते कि राज्य को संविधान के अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनों के लिए बालक के इस अधिकार पर युक्तियुक्त

निर्बंधन अधिरोपित करने की कोई शक्ति नहीं होगी ।

33. अब हम इस बात पर विचार कर सकते हैं कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय में अपनाया गया यह मत सही है अथवा नहीं कि शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन शिक्षा के अधिकार में अंतर्निहित है । संविधान के अनुच्छेद 21 में यह उपबंध है कि किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं । **उनी कृष्णन्, जे. पी. और अन्य** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन इस देश के प्रत्येक बालक/नागरिक को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क शिक्षा का अधिकार प्राप्त है । संविधान के अनुच्छेद 21 में यह उपबंधित है कि राज्य छह वर्ष की आयु से चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बालकों के लिए ऐसी रीति में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा जैसी राज्य, विधि द्वारा अवधारित करे । अतः, संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन बालक को चौदह वर्ष की आयु तक राज्य से निःशुल्क शिक्षा का दावा करने का मूल अधिकार है । संविधान के अनुच्छेद 21क की भाषा से यह और भी स्पष्ट होता है कि ऐसी निःशुल्क शिक्षा जिसका कोई बालक राज्य से दावा कर सकता है, उस रीति में होगी जैसा कि राज्य, विधि द्वारा अवधारित करे । अतः, यदि राज्य विधि द्वारा यह अवधारित करता है कि उन विद्यालयों में, जहां संविधान के अनुच्छेद 21क के अधीन निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराई जाती है, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या कोई अन्य भाषा होगी तो बालक संविधान के अनुच्छेद 21 या अनुच्छेद 21क के अधीन अधिकार के तौर पर यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे शिक्षा का वह माध्यम चुनने का अधिकार है जिसमें उसे राज्य द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए । हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं था कि शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21क के अधीन शिक्षा के अधिकार में अंतर्निहित है । अतः, प्रश्न सं. (ii) के संबंध में हमारा उत्तर यह है कि बालक और उसकी ओर से उसके माता-पिता या संरक्षक को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन न कि अनुच्छेद 21 या अनुच्छेद 21क के अधीन प्राथमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार है ।

34. प्रश्न सं. (iii) : क्या मातृभाषा अधिरोपित करने से संविधान के अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 19, अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 के अधीन मूल अधिकारों पर किसी रीति में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ?

चूंकि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में यह निष्कर्ष नहीं निकाला है कि मातृभाषा अधिरोपित करने से संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन मूल अधिकार पर किसी प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है इसलिए हमारे लिए इस प्रश्न का विनिश्चय करना आवश्यक नहीं है । हमें यह विनिश्चित करना होगा कि क्या मातृभाषा अधिरोपित करने से संविधान के अनुच्छेद 19, अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 के अधीन मूल अधिकारों पर किसी प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं ।

35. संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) को इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "29. **अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों का संरक्षण** – (1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा ।
>
> 30. **शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक-वर्गों का अधिकार** – (1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा ।"

संविधान के अनुच्छेद 29 के खंड (1) को पढ़ने से यह प्रकट होता है कि उसमें यह उपबंधित है कि भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा और अनुच्छेद 30 के खंड (1) में यह उपबंधित है कि शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक-वर्गों का अधिकार – (1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा ।

36. **डी. ए. वी. कालेज, भटिंडा और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में पंजाबी विश्वविद्यालय ने पंजाबी विश्वविद्यालय अधिनियम, 1961 (1961 का 35) की धारा 4(2) के अधीन

अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पंजाबी विश्वविद्यालय के अधीन सहबद्ध सभी महाविद्यालयों में शिक्षा और परीक्षा का एकमात्र माध्यम पंजाबी बनाया था । इस न्यायालय के समक्ष अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी गई थी कि ऐसी भाषा में, जो कि उस अल्पसंख्यक-वर्ग की मातृभाषा नहीं है जिसने शिक्षा संस्था की स्थापना की है, शिक्षा और परीक्षा का ऐसा माध्यम विहित करना संविधान के अनुच्छेद 29 के खंड (1) और अनुच्छेद 30 के खंड (1) के अधीन प्रदत्त अधिकारों का अतिक्रमणकारी है और इस न्यायालय की संविधान पीठ ने इस दलील को निम्नलिखित शब्दों में कायम रखा है :–

> "अल्पसंख्यक-वर्गों द्वारा अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने के अधिकार में शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार भी शामिल होगा जो कि अनुच्छेद 30(1) को अनुच्छेद 29(1) के साथ पढ़ने के परिणाम होगा ।"

इस प्रकार, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **डी. ए. वी. कालेज, भटिंडा और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह पहले ही अभिनिर्धारित कर दिया है कि अल्पसंख्यक-वर्गों को 'अपनी रुचि' की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार है और इसलिए उन्हें शिक्षा का वह माध्यम चुनने का अधिकार है जिसमें उनके द्वारा स्थापित और प्रशासित संस्थाओं में शिक्षा दी जाएगी ।

37. तथापि, विद्वान् महाधिवक्ता की दलील यह है कि उपर्युक्त विनिश्चय और इस न्यायालय के अन्य विनिश्चय ऐसे मामलों में दिए गए हैं जहां राज्य ने अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा से भिन्न भाषा में शिक्षा का माध्यम अधिरोपित किया था किन्तु यदि राज्य यह विहित करता है कि शिक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा होगी, जो कि अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा है तो संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग के अधिकार का अतिक्रमण नहीं होता है । हमें इस दलील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है क्योंकि इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 30(1) के अधीन अल्पसंख्यक समुदाय की 'रुचि' को अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा में शिक्षा देने तक सीमित करने की आवश्यकता नहीं है । **केरल एजूकेशन बिल, 1957** (उपर्युक्त) वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति एस. आर. दास ने इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ की बहुमत राय लिखते हुए निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"23. ऊपर निर्दिष्ट लघु प्रश्न का निपटारा करने के पश्चात् अब हम अनुच्छेद 30(1) की अंतर्वस्तु के बारे में हमारे समक्ष दिए गए मुख्य तर्क पर विचार करते हैं । प्रथमतः यह उल्लेखनीय है कि यह अनुच्छेद न केवल धार्मिक अल्पसंख्यक-वर्गों को बल्कि भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को भी कतिपय अधिकार देता है । द्वितीयतः, इन अल्पसंख्यक-वर्गों को प्रदत्त अधिकार उनकी रुचि की शिक्षा संस्थाओं का स्थापना करना है । इसमें यह नहीं कहा गया है कि धर्म पर आधारित अल्पसंख्यक-वर्गों को केवल धर्म की शिक्षा देने के लिए शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करनी चाहिए या यह कि भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को केवल उनकी भाषा पढ़ाने के लिए शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने का अधिकार होना चाहिए । इस अनुच्छेद में जो कुछ कहा गया है और इससे जो कुछ अभिप्रेत होता है वह यह है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने का अधिकार होना चाहिए । इन शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाए जाने वाले विषयों के संबंध में कोई परिसीमा नियत नहीं की गई है । चूंकि ऐसे अल्पसंख्यक-वर्ग साधारणतया यह वांछा करेंगे कि उनके बालकों का पालन-पोषण उचित रूप से और दक्षतापूर्वक किया जाना चाहिए और वे उच्चतर विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए पात्र होने चाहिएं और वे ऐसी प्रज्ञावान उपलब्धियों से सुसज्जित होकर संसार में प्रवेश करें जो उन्हें लोक सेवाओं, उनकी रुचि की शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश करने के लिए उपयुक्त बनाएंगी, इसलिए उनमें आवश्यक रूप से ऐसी संस्थाएं शामिल होंगी जो सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा भी दे रही हैं । अन्य शब्दों में, इस अनुच्छेद द्वारा यह उनकी रुचि पर छोड़ दिया गया है कि वे ऐसी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करें जो दोनों प्रयोजनों, अर्थात्, उनके धर्म, भाषा या संस्कृति को संरक्षित करने का प्रयोजन और उनके बालकों को संपूर्ण, अच्छी सामान्य शिक्षा देने का प्रयोजन को भी पूरा करेंगी ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया ।)

38. अब इस बात की परीक्षा करेंगे कि क्या किसी गैर-सहायताप्राप्त गैर-अल्पसंख्यक विद्यालय को प्राथमिक विद्यालय स्तर पर संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन शिक्षा का माध्यम चुनने का वैसा अधिकार प्राप्त है । संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन किसी नागरिक को कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार है । **टी.**

एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति कृपाल ने बहुमत के निर्णय को लिखते हुए संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन इस अधिकार का निर्वचन इस प्रकार किया कि उसके अंतर्गत शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने और उन्हें चलाने का अधिकार भी आता है । **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले उपर्युक्त निर्णय के पैरा 25 में बहुमत के निर्णय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया :–

> "ऐसी किसी शिक्षा संस्था की स्थापना करने और उसे चलाने को, जहां अनेक व्यक्तियों को अध्यापक या प्रशासनिक कर्मचारिवृन्द के रूप में नियोजित किया जाता है और ऐसा क्रियाकलाप चलाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप छात्रों को ज्ञान दिया जाता है, आवश्यक रूप से उपजीविका के रूप में समझा जाना चाहिए भले ही उसमें लाभ अर्जन का कोई तत्व न हो । यह समझना कठिन है कि शिक्षा अपने आप में अनुच्छेद 19(1)(छ) में दी गई चार अभिव्यक्तियों में से किसी भी अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आएगी । 'उपजीविका' किसी व्यक्ति का ऐसा क्रियाकलाप होगा जो अपने जीवन-यापन या जीवन के ध्येय के माध्यम के रूप में किया जाता है ।"

अतः, संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) में "उपजीविका" शब्द का निर्वचन **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के बहुमत वाले निर्णय में इस प्रकार किया गया था कि उसके अंतर्गत ऐसा क्रियाकलाप भी आता है जिसके परिणामस्वरूप छात्रों को ज्ञान दिया जाता है भले ही ऐसे क्रियाकलाप में लाभ अर्जन का कोई तत्व न हो । तथापि, संविधान के अनुच्छेद 30(1) की तरह अनुच्छेद 19(1)(छ) में "रुचि" शब्द नहीं आता है । हमारी सुविचारित राय में, "रुचि" शब्द के अभाव से कोई तात्विक अंतर नहीं पड़ता है क्योंकि हम यह पाते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 19 का शीर्षक "स्वातंत्र्य-अधिकार" है और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) में "उपजीविका" शब्द से पूर्व "कोई" शब्द के साथ "स्वतंत्रता" शब्द से यह अभिप्रेत होगा कि शिक्षा संस्था की स्थापना और प्रशासन करने के अधिकार के अंतर्गत किसी नागरिक का अपनी रुचि के शिक्षा माध्यम में शिक्षा देने के लिए विद्यालय स्थापित करने का अधिकार भी आएगा । यदि कोई नागरिक यह सोचता है कि उसे किसी विद्यालय की स्थापना करनी चाहिए

और उस विद्यालय में शिक्षा का माध्यम कोई विशिष्ट भाषा होनी चाहिए तो वह संविधान के अनुच्छेद 19(6) के अधीन राज्य द्वारा बनाए गए युक्तियुक्त विनियमों के अधीन रहते हुए ऐसे अधिकार का प्रयोग कर सकता है । अतः, हमारी यह सुविचारित राय है कि कोई ऐसा प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय, जो कि अल्पसंख्यक विद्यालय नहीं है और जो संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) के संरक्षण का उपभोग नहीं कर सकता है, उस विद्यालय में बालकों को शिक्षा देने के लिए शिक्षा के माध्यम का चयन कर सकता है ।

39. तथापि, यह सुस्थापित है कि सभी शिक्षा संस्थाएं अन्य बातों के साथ-साथ उचित शैक्षणिक स्तर बनाए रखने के लिए राज्य द्वारा बनाए गए विनियमों के अध्यधीन हो सकती हैं । संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन शिक्षा संस्था की स्थापना और प्रशासन करने के अधिकार पर विचार-विमर्श करते समय मुख्य न्यायमूर्ति कृपाल ने **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत की राय वाले न्यायाधीशों की ओर से निर्णय सुनाते हुए, निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "शिक्षा संस्था की स्थापना करने के अधिकार को विनियमित किया जा सकता है किन्तु ऐसे विनियमनकारी अध्युपाय साधारणतया उचित शैक्षणिक स्तर, वातावरण और बुनियादी सुविधाएं (जिनमें अर्हित कर्मचारिवृन्द भी हैं) बनाए रखने और उन व्यक्तियों द्वारा, जो प्रबंधमंडल के भारसाधक हैं कुप्रशासन के निवारण को सुनिश्चित करने के लिए होने चाहिएं..... ।"

टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत के निर्णय में मुख्य न्यायमूर्ति कृपाल ने पुनः संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन संरक्षाप्राप्त अल्पसंख्यक शिक्षा संस्था के अधिकार पर विचार-विमर्श करते समय निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "प्राधिकारियों के लिए ऐसे विनियम विहित करना अनुज्ञेय था जिनका पालन अल्पसंख्यक संस्था द्वारा सहबद्धता और मान्यता की ईप्सा करने या उसे प्रतिधारित करने से पूर्व अवश्य ही किया जाना चाहिए । किन्तु यह भी कहा गया था कि प्राधिकारी द्वारा बनाए गए विनियमों को उस संस्था के अल्पसंख्यक स्वरूप का अतिलंघन नहीं

करना चाहिए । इसलिए, दोनों उद्देश्यों के बीच - संस्था की उत्कृष्टता के मानक को सुनिश्चित करने और अल्पसंख्यक-वर्गों के उनकी शिक्षा संस्थाओं को स्थापना और प्रशासन करने के अधिकार को परिरक्षित करने के बीच संतुलन बनाए रखना होगा..... ।"

अतः, चाहे वह संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन अधिकार का उपभोग करने वाली प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त संस्था हो या चाहे वह संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन किसी अल्पसंख्यक संस्था को प्राप्त विशेष संरक्षण का उपभोग करने वाली कोई प्राइवेट संस्था हो, राज्य को ऐसे विनियमनकारी अध्युपाय अंगीकृत करने की शक्ति है जो युक्तिसंगतता की कसौटी पर खरे उतरते हों । इसके अलावा, राज्य विधि बनाकर या कार्यपालक आदेश जारी करके विनियमनकारी शक्ति का प्रयोग कर सकेगा ।

40. कर्नाटक राज्य के विद्वान् महाधिवक्ता ने यह दलील देने के लिए **गुजरात विश्वविद्यालय और एक अन्य** बनाम **श्री कृष्ण रंगनाथ मुधोलकर और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया कि शिक्षा का स्तर बनाए रखने के लिए विनियम विहित करने की शक्ति के अंतर्गत शिक्षा का माध्यम विहित करने की शक्ति भी आएगी । हम **गुजरात विश्वविद्यालय और एक अन्य** बनाम **श्री कृष्ण रंगनाथ मुधोलकर और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के विनिश्चय के सुसंगत भाग को उद्धृत करते हैं :–

"23. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की बाबत विधान बनाने की शक्ति सूची 2 की मद सं. 2 द्वारा अनन्य रूप से राज्यों में निहित है और इसलिए प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा की संस्थाओं में शिक्षा के माध्यम के संबंध में विधान बनाने की शक्ति राज्य विधान-मंडलों में निहित होनी चाहिए । तथापि, शिक्षा के माध्यम की बाबत विधान बनाने की शक्ति का पृथक् विधायी शीर्ष नहीं है; यह राज्य विधान-मंडलों में निहित होती है जिनमें शिक्षा के संबंध में विधान बनाने की शक्ति तब तक निहित होती है जब तक वह इसके प्रतिकूल आवश्यक आशय द्वारा छीन नहीं ली जाती है । मद सं. 63 से मद सं. 65 के अधीन शिक्षा के माध्यम की बाबत विधान बनाने की शक्ति उन मदों की व्याप्ति को ध्यान में रखते हुए संघ में विहित समझी जानी चाहिए । शिक्षा के माध्यम की बाबत विधान बनाने की शक्ति, जहां उसका सीधा संबंध और प्रभाव उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं या

> अनुसंधान और वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थाओं में समन्वय और स्तर के अवधारण से है, सूची 1 की मद सं. 66 द्वारा संघ में निहित समझी जानी चाहिए ।"

उपरोक्त उद्धरण से हमें यह प्रतीत होता है कि संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्यों और संघ के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम के अधीन प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा की बाबत विधान बनाने की शक्ति अनन्य रूप से राज्यों में निहित है और उसने इसके आगे यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्य शिक्षा का माध्यम विहित कर सकता है । तथापि, संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम विहित करने संबंधी राज्य की इस शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) और अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों का उल्लंघन करके नहीं किया जा सकता है । संविधान पीठ ने केवल यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि शिक्षा के माध्यम का सीधा संबंध या प्रभाव उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में स्तर के अवधारण पर पड़ता है तो शिक्षा का माध्यम विहित करने के लिए विधायी शक्ति का प्रयोग संघ द्वारा किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, उच्चतर शिक्षा के उन विषयों में, जिनके लिए केवल अंग्रेजी में पुस्तकें उपलब्ध हैं और जो विषय केवल अंग्रेजी में ही उचित रूप से पढ़ाए जा सकते हैं, अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में विहित करने का सीधा संबंध और प्रभाव शिक्षा के स्तर के अवधारण पर पड़ सकता है । तथापि, प्राथमिक विद्यालय स्तर पर पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक विद्यालयों में मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में विहित करने का शिक्षा स्तर के अवधारण पर कोई सीधा संबंध और प्रभाव नहीं है और इससे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) और अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

41. अब हम **इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पेरेंट्स एसोसिएशन** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय पर विचार कर सकते हैं जिसका अवलंब कर्नाटक राज्य द्वारा लिया गया है । इस न्यायालय ने एस. सी. सी. में यथा-प्रतिवेदित उपर्युक्त विनिश्चय के पैरा 20 में पृष्ठ 560 पर यह अभिनिर्धारित किया है कि सभी शिक्षा विशेषज्ञों का एकमत है कि छात्रों को अपनी विद्यालय की शिक्षा अपनी मातृभाषा में ही आरंभ करनी चाहिए और यह राय देने का कारण यह है कि यदि बालकों के कोमल मन पर शिक्षा का

भिन्न माध्यम थोपा जाता है तो सीखने की प्रक्रिया अस्वाभाविक हो जाती है और इससे बालकों पर निष्ठुर खिंचाव पड़ता है जिससे संपूर्ण अध्ययन प्रक्रिया यांत्रिक, कृत्रिम और उत्पीड़क बन जाती है किन्तु बुनियादी ज्ञान मातृभाषा के माध्यम से दिया जाता है तो बालक उस जानकारी को आसानी से ग्रहण कर सकेगा । उपर्युक्त निर्णय के पैरा 17 में पृष्ठ 559 पर इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने वे कारण भी दिए हैं जिनके आधार पर उसने आक्षेपित सरकारी आदेश को संविधान के अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) के अधिकारातीत क्यों नहीं पाया । ये कारण इसमें इसके नीचे उद्धृत किए जाते हैं :–

> "16. कर्नाटक राज्य को दी गई स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत सरकारी आदेश सं. 87 प्रौ. से. भा. 88, बंगलौर, तारीख 19 जून, 1989 (ऊपर उद्धृत) पारित किया गया है । तारीख 22 जून, 1989 को एक शुद्धिपत्र भी जारी किया गया है जो निम्नलिखित रूप में है –
>
> > "उपर्युक्त सरकारी आदेश के आदेश प्रभाग के पैरा (i) के स्थान पर, अर्थात्, 'पहली कक्षा से' शब्दों से '....अध्ययन के अधीन' शब्दों तक, निम्नलिखित पैरा रखा जाएगा :
> >
> > 'पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक, जहां यह प्रत्याशा की जाती है कि सामान्यतया शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी, परिशिष्ट 1 से केवल एक भाषा अध्ययन का अनिवार्य विषय होगी' ।"
>
> 17. उक्त सरकारी आदेश का सावधानीपूर्वक पठन करने पर यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होगा कि प्राथमिक स्तर पर अनिवार्यता का तत्व अब नहीं रह गया है क्योंकि सरकारी आदेश स्पष्ट है जब उसमें यह कहा गया है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक मातृभाषा शिक्षा का माध्यम होगी, परिशिष्ट 1 से केवल एक भाषा अध्ययन का अनिवार्य विषय होगी । तीसरी कक्षा से आगे कन्नड़ भाषा न बोलने वाले छात्रों के लिए कन्नड़ भाषा एक वैकल्पिक विषय होगा । यह स्वैच्छिक आधार पर पढ़ाया जाना है क्योंकि वर्ष के अंत में कन्नड़ भाषा में कोई परीक्षा नहीं होगी ।....."

इस प्रकार, इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा कर्नाटक राज्य के तारीख 19 जून, 1989 के सरकारी आदेश को कायम रखने के लिए दिए

गए कारण ये हैं कि सरकार ने तारीख 22 जून, 1989 को एक शुद्धिपत्र जारी किया था और शुद्धिपत्र के पश्चात् सरकारी आदेश को पढ़ने से यह दर्शित होगा कि प्राथमिक स्तर पर अब अनिवार्यता का कोई तत्व नहीं रह गया था और पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी । अतः, **इंग्लिश मीडियम स्टूडेंट्स पेरेंट्स एसोसिएशन** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए कोई नजीर नहीं है कि राज्य द्वारा शिक्षा का स्तर बनाए रखने के विनियमनकारी अध्युपाय के रूप में प्राथमिक विद्यालय में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक मातृभाषा विहित करने के लिए बाध्य किया जा सकता है ।

42. हमारी यह सुविचारित राय है कि यद्यपि विशेषज्ञों की इस संबंध में एक राय हो सकती है कि प्राथमिक विद्यालय में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालक अच्छी प्रकार से सीख सकते हैं यदि उन्हें उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाता है तथापि, राज्य मान्यता प्रदान करने की शर्त के रूप में यह अनुबद्ध नहीं कर सकता कि संविधान के अनुच्छेद 29(1) और अनुच्छेद 30(1) के अधीन संरक्षित अल्पसंख्यक-वर्ग के विद्यालयों में और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन कोई भी उपजीविका करने के अधिकार का उपभोग करने वाले प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालयों में पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक अध्ययन करने वाले बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम ऐसे अनुबंध के रूप में बालक की मातृभाषा होगी । हमें निर्देशित प्रश्न सं. (iii) का उत्तर हम तदनुसार देते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि मातृभाषा अधिरोपित करने से संविधान के अनुच्छेद 19, अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 के अधीन मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

43. प्रश्न सं. (iv) : क्या सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों में सरकारी सहायताप्राप्त विद्यालय और प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय भी आते हैं ?

उनी कृष्णन्, जे. पी. और अन्य बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी ने अपनी ओर से और न्यायमूर्ति पांडियान की ओर से निर्णय लिखते हुए पृष्ठ 753 पर पैरा 204 में यह अभिनिर्धारित किया है कि शिक्षा संस्था की स्थापना करने के अधिकार के अंतर्गत मान्यता का अधिकार या सहबद्धता का अधिकार नहीं आता है और मान्यता और सहबद्धता शिक्षा संस्थाओं का स्थापना और प्रशासन के अधिकार के अर्थपूर्ण प्रयोग के लिए आवश्यक हैं । इस निर्णय

में, इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मान्यता सरकार द्वारा या मान्यता प्रदान करने के लिए सशक्त किसी अन्य प्राधिकारी या निकाय द्वारा प्रदान की जा सकती है और सहबद्धता ऐसे शैक्षणिक निकाय द्वारा अनुदत्त की जा सकती है जो सहबद्धता अनुदत्त करने के लिए सशक्त है । इस निर्णय में, इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों ने इसके आगे यह अभिनिर्धारित किया है कि कोई व्यक्ति शिक्षा संस्था की स्थापना करने, छात्रों को प्रवेश देने, शिक्षा देने, परीक्षा आयोजित करने और प्रमाणपत्र देने के लिए स्वतंत्र है किन्तु शिक्षा संस्था को इस बात के लिए बाध्य करने का कोई अधिकार नहीं है कि ऐसी संस्था द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र या दी गई डिग्रियां राज्य द्वारा मान्यताप्राप्त होनी चाहिए और इसलिए संस्था को समुचित अभिकरण से ऐसी मान्यता या सहबद्धता की ईप्सा करनी पड़ती है । **उनी कृष्णन्, जे. पी. और अन्य** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले उपरोक्त मामले में न्यायमूर्ति एस. मोहन ने अपने सहमत निर्णय में पृष्ठ 693 पर पैरा 76 में यह मत भी व्यक्त किया है कि मान्यता शिक्षा संस्था के राज्य द्वारा अधिकथित मानकों के अनुरूप होने के प्रयोजनार्थ होती है और सहबद्धता पाठ्य-विवरण और पाठ्यक्रम के संबंध में है और जब तक ये सहबद्ध करने वाले निकाय के निर्धारण के अनुसार नहीं होते तब तक प्रमाणपत्र प्रदान नहीं किए जा सकते और इसलिए शिक्षा संस्था पाठ्य-विवरण और पाठ्यक्रम का अनुपालन करने के लिए बाध्य है । **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले बहुमत के निर्णय में **उनी कृष्णन्, जे. पी. और अन्य** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय में तीन न्यायाधीशों द्वारा अभिव्यक्त इन मतों से विचलन नहीं किया गया है । मुख्य न्यायमूर्ति कृपाल ने **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत न्यायाधीशों की ओर से निर्णय लिखते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि शिक्षा संस्था की स्थापना करने संबंधी मूल अधिकार को मान्यता या सहबद्धता की ईप्सा करने के अधिकार से भ्रमित नहीं किया जा सकता है । इस न्यायालय द्वारा विकसित विधि के उपर्युक्त विचार-विमर्श के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सभी विद्यालयों को, चाहे उनकी स्थापना सरकार द्वारा की जाती है या चाहे वे सरकार द्वारा सहायताप्राप्त हैं या चाहे वे सरकार द्वारा सहायताप्राप्त नहीं हैं, समुचित अधिनियम या सरकारी आदेश के उपबंधों के अनुसार मान्यता दिए जाने की आवश्यकता पड़ती है । तदनुसार, सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालयों के अंतर्गत न केवल सरकारी

सहायताप्राप्त विद्यालय आते हैं बल्कि वे गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय भी आते हैं जिन्हें मान्यता प्रदान की गई है ।

44. प्रश्न सं. (v) : क्या राज्य संविधान के अनुच्छेद 350क के आधार पर भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को प्राथमिक विद्यालयों में केवल मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम चुनने के लिए बाध्य कर सकता है ?

हमने ऊपर संविधान के अनुच्छेद 350क को उद्धृत किया है और हमने यह अवेक्षा की है कि इस अनुच्छेद में यह उपबंधित है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा । हमने पहले ही यह अभिनिर्धारित कर दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग को शिक्षा का ऐसा माध्यम चुनने का अधिकार है जिसमें उस विद्यालय में, जिसकी स्थापना उसने की है, प्राथमिक स्तर पर शिक्षा दी जाएगी । अतः, अनुच्छेद 350क का निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है कि वह राज्य को इस बात के लिए सशक्त करता है कि वह किसी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्ग को अनुच्छेद 30(1) के अधीन इस मूल अधिकार का अतिक्रमण करते हुए उसके द्वारा स्थापित प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा के माध्यम के रूप में केवल अपनी मातृभाषा का चयन करे । तदनुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 350क के अधीन राज्य को भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में केवल उनकी मातृभाषा का चयन करने के लिए बाध्य करने की कोई शक्ति नहीं है ।

45. हमें जो प्रश्न निर्देशित किए गए हैं उनके संबंध में हमारे उत्तरों को ध्यान में रखते हुए, हम 2013 की सिविल अपील सं. 5166-5190, 2013 की सिविल अपील सं. 5191-5199, 2013 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 32858 से उद्भूत होने वाली अपील और 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 290 को खारिज करते हैं । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें और रिट याचिका खारिज की गईं ।

ग्रो.

———————

[2014] 3 उम. नि. प. 434

चेरूकुरी मणि पत्नी नरेन्द्र चौधरी

बनाम

मुख्य सचिव, आन्ध्र प्रदेश सरकार और अन्य

8 मई, 2014

न्यायमूर्ति (श्रीमती) रंजना प्रकाश देसाई और न्यायमूर्ति एन. वी. रमना

आन्ध्र प्रदेश प्रिवेंशन आफ डेंजेरस एक्टीविटीज़ आफ बूटलैगर्स, डकैत, ड्रग अफेंडर्स, गुंडाज़, इम्मोरल ट्रेफिक अफेंडर्स एंड लैंड ग्रेबर्स ऐक्ट, 1986 – धारा 3 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 22(5)] – निवारक निरोध – वैधता – किसी व्यक्ति को एक ही बार में बारह मास की अवधि के लिए निरुद्ध करने का निदेश देने वाला निरोध आदेश अविधिमान्य और अवैध है ।

आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी गोदावरी जिले के जिला मजिस्ट्रेट (प्रत्यर्थी सं. 2) ने आन्ध्र प्रदेश प्रिवेंशन आफ डेंजेरस एक्टीविटीज़ आफ बूटलैगर्स, डकैत, ड्रग अफेंडर्स, गुंडाज़, इम्मोरल ट्रेफिक अफेंडर्स एंड लैंड ग्रेबर्स ऐक्ट, 1986 के अधीन यह कथन करते हुए तारीख 30 सितम्बर, 2013 को एक निवारक निरोध आदेश जारी किया था कि अपीलार्थी के पति (निरुद्ध व्यक्ति) में वे सभी लक्षण हैं कि उसे अधिनियम की धारा 2(छ) के अधीन यथा-परिकल्पित गुंडा कहा जाए । यह भी उल्लेख किया गया है कि वह सरकारी और प्राइवेट संपत्तियों की चोरी करने के अनेक मामलों और सार्वजनिक संपत्तियों को नष्ट करने के मामलों में भी आलिप्त रहा है और उसके असामाजिक क्रियाकलाप समाज और जनसाधारण के लिए अपहानिकर हैं और उसके विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत 11 मामलों के प्रति निर्देश किया गया । कलक्टर ने निरोध आदेश पारित करते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि निरुद्ध व्यक्ति को अधिनियम की धारा 8(1) के अधीन सरकार को अभ्यावेदन करने का अधिकार है और उसका मामला अधिनियम की धारा 10 के अधीन पुनर्विलोकन और राय के लिए सलाहकार बोर्ड को निर्देशित किया जाएगा और सलाहकार बोर्ड द्वारा निरुद्ध व्यक्ति की व्यक्तिगत रूप से सुनवाई की जा सकती है । कलक्टर ने यह भी उपदर्शित किया कि सरकार, सलाहकार बोर्ड की राय के आधार पर निरोध की तारीख से 12 मास से अनधिक अवधि के लिए निरोध को पुष्ट और जारी रख सकता है । अपीलार्थी के पति को निरोध के आधारों के साथ

निरोध आदेश की प्रति की तामील करने के पश्चात् उसे प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा अभिरक्षा में ले लिया गया था और उसे तारीख 5 अक्तूबर, 2013 से अब तक केन्द्रीय कारागार, राजमुंदरी में निरुद्ध रखा गया था । ऐसा प्रतीत होता है कि कलक्टर की सिफारिश के आधार पर और सलाहकार बोर्ड से रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात् आन्ध्र प्रदेश सरकार ने तारीख 6 नवम्बर, 2013 का सरकारी आदेश जारी किया और निरुद्ध व्यक्ति को उस तारीख से जिसको उसे निरुद्ध किया गया था, बारह मास की अवधि के लिए निरुद्ध करने का निदेश दिया । जब अपीलार्थी ने अपने पति के निरोध को उच्च न्यायालय के समक्ष बन्दी-प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका में चुनौती दी तब उच्च न्यायालय ने उसे अस्पष्ट आदेश द्वारा खारिज कर दिया । अपीलार्थी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आन्ध्र प्रदेश प्रिवेंशन आफ डेंजेरस एक्टीविटीज़ आफ बूटलैगर्स, डकैत, ड्रग अफेंडर्स, गुंडाज़, इम्मोरल ट्रेफिक अफेंडर्स एंड लैंड ग्रेबर्स अधिनियम, 1986 के उपबंधों का पठन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार, जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त ऐसे प्राधिकारी हैं जिन्हें निरोध आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान की गई है । एकमात्र अंतर यह है कि सरकार द्वारा पारित निरोध आदेश प्रथम बार में तीन मास की अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा जबकि जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त द्वारा पारित वैसे ही आदेश 12 दिन की आरंभिक अवधि के लिए प्रवृत्त रहेंगे । 12 दिनों से परे निरोध जारी रहना सरकार द्वारा इस संबंध में प्रदान किए गए अनुमोदन पर निर्भर करेगा । उपधारा (3) में इस पहलू को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है । अधिनियम की धारा 13 में यह आदिष्ट है कि अधिनियम के अधीन निरोध की अधिकतम अवधि 12 मास है । धारा 3 की उपधारा (2) के परन्तुक का तात्पर्य निरोध आदेश के समय-समय पर प्रवर्तन में होने के बारे में बिल्कुल स्पष्ट है । निरोध का कोई आदेश प्रथम बार तीन मास की अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा । एकमात्र सरकार को ही इस अवधि को तीन मास से परे विस्तारित करने की शक्ति प्रदान की गई है । तथापि, ऐसा विस्तारण एक बार में तीन मास से अधिक अवधि के लिए नहीं हो सकता है । (पैरा 12 और 13)

जहां विधि में यह विहित है कि कोई बात किसी विशिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करके किसी विशिष्ट रीति में की जाएगी वहां वह बात विहित प्रक्रिया का विचलन किए बिना उसी रीति में विधि के उपबंधों का पालन करके की जाएगी । जब अधिनियम की धारा 3 के उपबंधों में प्राधिकारियों

को स्पष्ट रूप से यह आदिष्ट किया गया है कि एक बार में केवल तीन मास से अनधिक अवधि के लिए निरोध आदेश पारित किया जाए तब प्रस्तुत मामले में वह सरकारी आदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी के पति को एक ही बार में बारह मास के अवधि के लिए निरुद्ध करने का निदेश दिया गया है, स्पष्टतः विहित रीति का अतिक्रमण है और विधि के उपबंधों के प्रतिकूल है । सरकार इस सतर्क विधायी आशय की अवज्ञा करते हुए कि निरोध के विस्तारण से संबंधित आदेश भी एक बार में तीन मास से अधिक के लिए नहीं होना चाहिए, निरोध की अवधि को एक ही बार में बारह मास की अधिकतम अवधि तक विस्तारित करने का निदेश नहीं दे सकती या विस्तारित नहीं कर सकती । किसी को भी निरोध आदेश पारित करते समय या समय-समय पर निरोध अवधि में विस्तार करते समय अंतर्निहित सिद्धांतों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए । (पैरा 15)

सामान्यतया, जिस व्यक्ति को अधिनियम के उपबंधों के अधीन निरुद्ध किया जाता है वह विचारण का सामना नहीं कर रहा होता है जो कि दूसरे शब्दों में उसकी स्वाधीनता को कम करने और सिविल अधिकारों से इनकार करने की कोटि में आता है । ऐसे मामलों में, समय-समय पर इस बात का निर्धारण और पुनर्विलोकन करना होता है कि क्या ऐसे व्यक्ति का निरन्तर निरोध आवश्यक है अथवा नहीं । इन कारकों को विचार में लेते हुए किसी व्यक्ति के निरोध का पुनर्विलोकन करने के लिए विधान-मंडल ने विनिर्दिष्ट रूप से सलाहकार बोर्ड की प्रक्रिया का उपबंध किया है । समुचित पुनर्विलोकन के बिना एक-साथ बारह मास की अवधि के लिए निरोध आदेश पारित करना निरुद्ध व्यक्ति के अधिकारों का भयोपरापी है । अतः, आक्षेपित सरकारी आदेश, जिसके द्वारा सीधे ही बारह मास की अधिकतम अवधि के लिए निरोध का निदेश दिया गया था, विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है । इस मामले में आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा पारित निरोध आदेश से विधि के उपबंधों का उल्लंघन होता है । एकमात्र इसी आधार पर, अन्य प्रश्न पर विचार किए बिना यह अपील मंजूर की जानी चाहिए और निरोध का आदेश अभिखंडित किया जाना चाहिए । (पैरा 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 386 : **मुनागला यादम्मा** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ;	8

[2011] (2011) 5 एस. सी. सी. 244 :
रेखा बनाम **तमिलनाडु राज्य** । 8

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 1133.

2013 की रिट याचिका सं. 30794 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की हैदराबाद खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 28 अक्तूबर, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री ए. टी. एम. रंगरामानुजम, ज्येष्ठ अधिवक्ता, आर. के. अदसुरे, ए. वी. एस. राजू, वी. के. सिद्धार्थन, डी. महेश बाबू, अमित के. नायडू, सुचित्रा हरंगख्वाप, अमजीत मकबूल, आदित्य जैन, बी. रामकृष्ण राव और टी. वी. भास्कर राव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमना ने दिया ।

न्या. रमना – इजाजत दी जाती है ।

2. अपीलार्थी ने, जो कि चेरूकुरी नरेन्द्र चौधरी नामक एक निरुद्ध व्यक्ति की पत्नी है, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह अभिकथन करते हुए रिट याचिका फाइल की है कि उसके पति को अप्राधिकृत रूप से निरुद्ध किया गया है और पारित निरोध आदेश अवैध था और उसने उसे छोड़ देने की ईप्सा की है । यह रिट याचिका उच्च न्यायालय ने तारीख 28 अक्तूबर, 2013 के आक्षेपित आदेश द्वारा यह कथन करते हुए खारिज कर दी थी कि जब तक सक्षम न्यायालय यह विनिश्चित नहीं करता कि निरोध अवैध और अविधिमान्य था तब तक यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अप्राधिकृत निरोध है । अपीलार्थी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की है ।

3. वे तथ्य जो इस अपील के निपटारे के लिए आवश्यक हैं, ये हैं कि आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी गोदावरी जिले के जिला मजिस्ट्रेट (प्रत्यर्थी सं. 2) ने आन्ध्र प्रदेश प्रिवेंशन आफ डेंजेरस एक्टीविटीज़ आफ बूटलैगर्स, डकैत, ड्रग अफेंडर्स, गुंडाज़, इम्मोरल ट्रेफिक अफेंडर्स एंड लैंड ग्रेबर्स ऐक्ट, 1986 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) के अधीन यह कथन करते हुए

तारीख 30 सितम्बर, 2013 को एक निवारक निरोध आदेश जारी किया था कि अपीलार्थी के पति (निरुद्ध व्यक्ति) में वे सभी लक्षण हैं कि उसे अधिनियम की धारा 2(छ) के अधीन यथा-परिकल्पित गुंडा कहा जाए । यह भी उल्लेख किया गया है कि वह सरकारी और प्राइवेट संपत्तियों की चोरी करने के अनेक मामलों और सार्वजनिक संपत्तियों को नष्ट करने के मामलों में भी आलिप्त रहा है और उसके असामाजिक क्रियाकलाप समाज और जनसाधारण के लिए अपहानिकर हैं और उसके विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत 11 मामलों के प्रति निर्देश किया गया ।

4. यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि कलक्टर ने निरोध आदेश पारित करते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि निरुद्ध व्यक्ति को अधिनियम की धारा 8(1) के अधीन सरकार को अभ्यावेदन करने का अधिकार है और उसका मामला अधिनियम की धारा 10 के अधीन पुनर्विलोकन और राय के लिए सलाहकार बोर्ड को निर्देशित किया जाएगा और सलाहकार बोर्ड द्वारा निरुद्ध व्यक्ति की व्यक्तिगत रूप से सुनवाई की जा सकती है । कलक्टर ने यह भी उपदर्शित किया कि सरकार, सलाहकार बोर्ड की राय के आधार पर निरोध की तारीख से 12 मास से अनधिक अवधि के लिए निरोध को पुष्ट और जारी रख सकता है ।

5. अपीलार्थी के पति को निरोध के आधारों के साथ निरोध आदेश की प्रति की तामील करने के पश्चात् उसे प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा अभिरक्षा में ले लिया गया था और उसे तारीख 5 अक्तूबर, 2013 से अब तक केन्द्रीय कारागार, राजमुंदरी में निरुद्ध रखा गया था ।

6. ऐसा प्रतीत होता है कि कलक्टर की सिफारिश के आधार पर और सलाहकार बोर्ड से रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात् आन्ध्र प्रदेश सरकार ने तारीख 6 नवम्बर, 2013 का सरकारी आदेश सं. 4803 जारी किया और निरुद्ध व्यक्ति को उस तारीख से जिसको उसे निरुद्ध किया गया था, अर्थात्, 5 अक्तूबर, 2013 से बारह मास की अवधि के लिए निरुद्ध करने का निदेश दिया ।

7. जब अपीलार्थी ने अपने पति के निरोध को उच्च न्यायालय के समक्ष बन्दी-प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका में चुनौती दी तब उच्च न्यायालय ने उसे अस्पष्ट आदेश द्वारा खारिज कर दिया । हमारी सुविचारित राय में, जब बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट फाइल की जाती है, भले ही याची ने याचिका की विरचना उचित रूप में न की हो और समुचित अनुतोष की ईप्सा न की

हो, तो भी न्यायालय से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह मामले की परीक्षा करे और उसका गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करे । सामान्यतया, ऐसे मामले में जहां किसी व्यक्ति की स्वाधीनता दांव पर है, न्यायालय प्रक्रियात्मक पहलुओं के संबंध में उदार दृष्टिकोण अपनाएंगे । किन्तु दुर्भाग्यवश, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को आरंभ में ही खारिज कर दिया है ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने हमारे समक्ष मुख्य रूप से यह दलील दी है कि अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, प्रथम बार निरोध की अवधि तीन मास से अधिक नहीं होगी और किसी व्यक्ति को लम्बी अवधि तक विचारण का सामना किए बिना निरोधाधीन नहीं रखा जा सकता है । जब अपीलार्थी के पति - निरुद्ध व्यक्ति - के विरुद्ध लगभग 11 मामलों में भारतीय दंड संहिता के विभिन्न उपबंधों के अधीन पहले ही आरोप लगाए गए हैं इसलिए उसके विरुद्ध निरोध विधियों का अवलंब लेना और उसे विचारण का सामना न करने देना विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 के खंड (4)(क) के भी प्रतिकूल है । उसने आगे यह दलील दी कि निरुद्ध व्यक्ति को 12 मास की अवधि के लिए निरुद्ध करने का निदेश देने वाला सरकारी आदेश अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के परन्तुक के प्रतिकूल है और एकमात्र इसी आधार पर निरोध का आदेश अपास्त किया जा सकता है । उसने अपनी दलीलों के समर्थन में **रेखा** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] और **मुनागला यादम्मा** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का जोरदार अवलंब लिया ।

9. राज्य की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री ए. टी. एम. रंगरामानुजम ने निरोध आदेश का समर्थन किया और ग्रीष्म अवकाश के पश्चात् तक समय देने की ईप्सा की ।

10. अब हमारे समक्ष विचारार्थ प्रश्न यह है कि राज्य सरकार को अधिनियम के उपबंधों के अधीन किसी व्यक्ति को एक साथ 12 मास की अवधि तक निरुद्ध करने के लिए निरोध आदेश पारित करने की शक्ति प्राप्त है अथवा नहीं ।

---

[1] (2011) 5 एस. सी. सी. 244.

[2] (2012) 2 एस. सी. सी. 386.

11. उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए अधिनियम के सुसंगत उपबंधों की परीक्षा करना आवश्यक है । अधिनियम की धारा 3, अधिनियम के अधीन यथा-परिभाषित कतिपय वर्गों के व्यक्तियों को निरुद्ध करने के लिए सशक्त करती है । यह धारा, शक्ति प्रदत्त करने के अलावा, निरोध आदेश पारित करने की रीति तथा उनकी अवधि को भी विनियमित करती है । यह धारा निम्नलिखित रूप में है :–

> *"**धारा 3 : कतिपय व्यक्तियों को निरुद्ध करने का आदेश करने की शक्ति** – (1) सरकार, यदि उसका किसी चोर बाजारिया (बूटलैगर), डकैत, औषध-अपराधी, गुंडा, अनैतिक व्यापार के अपराधी या भूमि हथियाने वाले व्यक्ति की बाबत यह समाधान हो जाता है कि उसे ऐसी रीति में, जो लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली है, कार्य करने से निवारित करने की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक है, ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध किए जाने का निदेश देने वाला आदेश कर सकेगी ।
>
> (2) यदि उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जो किसी जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर किसी क्षेत्र में विद्यमान हैं या जिनके विद्यमान होने की संभावना है, सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक है तो वह लिखित में आदेश द्वारा यह निदेश कर सकेगी कि उस अवधि के दौरान जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, ऐसा जिला

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "**Section 3 : Power to make order detaining certain persons** – (1) The Government may, if satisfied with respect to any bootlegger, dacoit, drug-offender, goonda, immoral traffic offender or land-grabber that with a view to preventing him from acting in any manner prejudicial to the maintenance of public order, it is necessary so to do, make an order directing that such person be detained.
>
> (2) If, having regard to the circumstances prevailing or likely to prevail in any area within the local limits of the jurisdiction of a District Magistrate or a Commissioner of Police, the Government are satisfied that it is necessary so to do, they may, by order in writing direct that during such period as may be specified in the order, such District

मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त भी, यदि उसका उपधारा (1) में यथा-उपबंधित के अनुसार समाधान हो जाता है, उक्त उपधारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा :

परन्तु सरकार द्वारा इस उपधारा के अधीन किए गए आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि **प्रथम बार तीन मास से अधिक नहीं होगी किन्तु सरकार, यदि उसका पूर्वोक्त प्रकार से समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक है तो समय-समय पर ऐसी अवधि को किसी ऐसी अवधि द्वारा, जो किसी भी एक समय में तीन मास से अधिक न हो, विस्तारित करने के लिए ऐसे आदेश में संशोधन कर सकेगी ।**

(3) जब उपधारा (2) में उल्लिखित किसी अधिकारी द्वारा इस धारा के अधीन कोई आदेश किया जाता है तब वह इस तथ्य की रिपोर्ट सरकार को तुरंत देगा जिसमें वे आधार भी होंगे जिनके आधार पर आदेश किया गया है और ऐसी अन्य विशिष्टियां भी होंगी जो उसकी राय में मामले से संबंधित हैं और कोई ऐसा आदेश तब तक उसके किए जाने के बारह दिनों से अधिक के लिए प्रवृत्त नहीं रहेगा जब तक सरकार द्वारा इसी बीच उसका अनुमोदन नहीं कर दिया गया है ।"

Magistrate or Commissioner of Police may also, if satisfied as provided in Sub-section (1), exercise the powers conferred by the said section :

Provided that the period specified in the order made by the Government under this sub-section **shall not in the first instance, exceed three months, but the Government may, if satisfied as aforesaid that it is necessary so to do, amend such order to extend such period from time to time by any period not exceeding three months at any one time.**

(3) When any order is made under the section by an officer mentioned in Sub-Section (2), he shall forthwith report the fact to the Government together with the grounds on which the order has been made and such other particulars as in his opinion, have a bearing on the matter and no such order shall remain in force for more than twelve days after the making thereof, unless, in the meantime, it has been approved by the Government."

12. उपर्युक्त उपबंधों का पठन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार, जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त ऐसे प्राधिकारी हैं जिन्हें निरोध आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान की गई है । एकमात्र अंतर यह है कि सरकार द्वारा पारित निरोध आदेश प्रथम बार में तीन मास की अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा जबकि जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त द्वारा पारित वैसे ही आदेश 12 दिन की आरंभिक अवधि के लिए प्रवृत्त रहेंगे । 12 दिनों से परे निरोध जारी रहना सरकार द्वारा इस संबंध में प्रदान किए गए अनुमोदन पर निर्भर करेगा । उपधारा (3) में इस पहलू को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है । अधिनियम की धारा 13 में यह आदिष्ट है कि अधिनियम के अधीन निरोध की अधिकतम अवधि 12 मास है ।

13. धारा 3 की उपधारा (2) के परन्तुक का तात्पर्य निरोध आदेश के समय-समय पर प्रवर्तन में होने के बारे में बिल्कुल स्पष्ट है । निरोध का कोई आदेश प्रथम बार तीन मास की अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा । एकमात्र सरकार को ही इस अवधि को तीन मास से परे विस्तारित करने की शक्ति प्रदान की गई है । तथापि, ऐसा विस्तारण एक बार में तीन मास से अधिक अवधि के लिए नहीं हो सकता है । इसका अर्थ यह है कि यदि सरकार का आशय किसी व्यष्टि को इस अधिनियम के लिए 12 मास की अधिकतम अवधि के लिए निरुद्ध करना है तो तीन मास की अवधि के लिए निरोध का आरंभिक आदेश और उसके विस्तारण के कम से कम तीन ऐसे आदेश अवश्य होने चाहिएं जो प्रत्येक तीन मास से अनधिक अवधि के लिए हों । "समय-समय पर ऐसी अवधि को किसी ऐसी अवधि द्वारा, जो किसी भी एक समय में तीन मास से अधिक न हो, विस्तारित" अभिव्यक्ति इस संबंध में महत्वपूर्ण हो जाती है ।

14. निरोध आदेश समय-समय पर उपर्युक्त रीति में पारित करने की अपेक्षा का अपना महत्व है । यह स्मरणीय है कि तीन मास की आरंभिक निरोध अवधि का निर्बंधन भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 के खंड (4)(क) में अंतर्विष्ट आज्ञा के कार्यान्वयन के अलावा कुछ नहीं है । यह खंड निम्नलिखित रूप में है :–

> "**खंड 4** : निवारक निरोध का उपबंध करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति की तीन मास से अधिक अवधि के लिए तब तक निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत नहीं करेगी जब तक कि –
>
> (क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या

न्यायाधीश रहे हैं या न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्हित हैं, मिलकर बने सलाहकार बोर्ड ने तीन मास की उक्त अवधि की समाप्ति से पहले यह प्रतिवेदन नहीं दिया है कि उसकी राय में ऐसे निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं :

परन्तु इस उपखंड की कोई बात किसी व्यक्ति का उस अधिकतम अवधि से अधिक अवधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत नहीं करेगी जो खंड (7) के उपखंड (ख) के अधीन संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा विहित की गई है ; या

(ख) ऐसे व्यक्ति को खंड (7) के उपखंड (क) और उपखंड (ख) के अधीन संसद् द्वारा बनाई गई विधि के उपबंधों के अनुसार निरुद्ध नहीं किया जाना है ।"

15. जहां विधि में यह विहित है कि कोई बात किसी विशिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करके किसी विशिष्ट रीति में की जाएगी वहां वह बात विहित प्रक्रिया का विचलन किए बिना उसी रीति में विधि के उपबंधों का पालन करके की जाएगी । जब अधिनियम की धारा 3 के उपबंधों में प्राधिकारियों को स्पष्ट रूप से यह आदिष्ट किया गया है कि एक बार में केवल तीन मास से अनधिक अवधि के लिए निरोध आदेश पारित किया जाए तब प्रस्तुत मामले में वह सरकारी आदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी के पति को एक ही बार में बारह मास के अवधि के लिए निरुद्ध करने का निदेश दिया गया है, स्पष्टतः विहित रीति का अतिक्रमण है और विधि के उपबंधों के प्रतिकूल है । सरकार इस सतर्क विधायी आशय की अवज्ञा करते हुए कि निरोध के विस्तारण से संबंधित आदेश भी एक बार में तीन मास से अधिक के लिए नहीं होना चाहिए, निरोध की अवधि को एक ही बार में बारह मास की अधिकतम अवधि तक विस्तारित करने का निदेश नहीं दे सकती या विस्तारित नहीं कर सकती । किसी को भी निरोध आदेश पारित करते समय या समय-समय पर निरोध अवधि में विस्तार करते समय अंतर्निहित सिद्धांतों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए ।

16. सामान्यतया, जिस व्यक्ति को अधिनियम के उपबंधों के अधीन निरुद्ध किया जाता है वह विचारण का सामना नहीं कर रहा होता है जो कि दूसरे शब्दों में उसकी स्वाधीनता को कम करने और सिविल अधिकारों से इनकार करने की कोटि में आता है । ऐसे मामलों में, समय-समय पर

इस बात का निर्धारण और पुनर्विलोकन करना होता है कि क्या ऐसे व्यक्ति का निरन्तर निरोध आवश्यक है अथवा नहीं । इन कारकों को विचार में लेते हुए किसी व्यक्ति के निरोध का पुनर्विलोकन करने के लिए विधान-मंडल ने विनिर्दिष्ट रूप से सलाहकार बोर्ड की प्रक्रिया का उपबंध किया है । समुचित पुनर्विलोकन के बिना एक-साथ बारह मास की अवधि के लिए निरोध आदेश पारित करना निरुद्ध व्यक्ति के अधिकारों का भयोपरापी है । अतः, आक्षेपित सरकारी आदेश, जिसके द्वारा सीधे ही बारह मास की अधिकतम अवधि के लिए निरोध का निदेश दिया गया था, विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है ।

17. हालांकि राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने ग्रीष्म अवकाश से परे स्थगन की ईप्सा की है किन्तु हम मात्र इस कारण से उसकी प्रार्थना स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि निरुद्ध व्यक्ति के निरोध की अवधि का अधिकतम अंश ग्रीष्म अवकाश की समाप्ति पर पूरा होने वाला है । निस्संदेह, निरुद्ध व्यक्ति को तारीख 5 अक्तूबर, 2013 को निरुद्ध किया गया था जिसका अभिप्राय यह है कि वह विधि द्वारा यथा-परिकल्पित किसी कालिक पुनर्विलोकन के बिना लगातार लगभग सात मास तक निरोधाधीन रहा है । अतः, हमारी यह सुविचारित राय है कि इस मामले में आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा पारित निरोध आदेश से विधि के उपबंधों का उल्लंघन होता है । एकमात्र इसी आधार पर, अन्य प्रश्न पर विचार किए बिना हमने यह समझा कि यह अपील मंजूर की जानी चाहिए और निरोध का आदेश अभिखंडित किया जाना चाहिए ।

18. हम तदनुसार अपील मंजूर करते हैं, आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा जारी निरोध आदेश अभिखंडित करते हैं और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हैं । निरुद्ध व्यक्ति को तुरंत रिहा किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

———

[2014] 3 उम. नि. प. 445

देविन्दर सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

2 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – अपराध के संघटक – साक्ष्य अधिनियम के अधीन उपधारणा – दहेज की मांग को लेकर पत्नी को तंग किया जाना और विवाह के सात मास के भीतर उसकी हत्या किया जाना – दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन से यह स्पष्ट होने पर कि मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर दाह क्षतियों के कारण अर्थात् सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और उसे उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज के लिए मांग भी किया था, ऐसी स्थिति में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

इस मामले में, अपीलार्थी सहित चार वयस्क अभियुक्तों का विचारण किया था । अपराध के समय दो अभियुक्त किशोर अवस्था में थे, अतः उनका विचारण अलग न्यायालय में किया गया । वयस्कों में केवल अपीलार्थी को मृतका के दहेज मृत्यु कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया गया और अन्य तीन को दोषमुक्त कर दिया गया । उनकी दोषमुक्ति के विरुद्ध राज्य ने कोई भी अपील नहीं की है । अपीलार्थी ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि की । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथन से यह स्पष्ट हो गया है कि मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात मास के भीतर हुई है । स्वीकृततः, मृतका की मृत्यु दाह क्षतियों के कारण अर्थात् सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है । अब न्यायालय को

अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह विचार करना होगा कि क्या शेष संघटकों का समाधान हुआ है या नहीं । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथन विशेष हैं क्योंकि वे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं । उन्होंने अपने कथनों में विशेष रूप से दहेज की मांग को लेकर तंग किए जाने के संबंध में उल्लेख किया है । मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात मास के भीतर हुई है । उसने भी तंग किए जाने के बारे में टेलीफोन द्वारा शिकायत की है । इस प्रकार अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि आहत की मृत्यु के कुछ पूर्व उसे दहेज के लिए तंग किया गया था । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए, जैसाकि ऊपर चर्चा की गई है, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि अभियोजन पक्ष दंड संहिता की धारा 304ख के संघटकों को साबित करने में सफल हुआ है । विचारण न्यायालय ने यह ठीक ही उपधारित किया है कि अभियुक्त ने आहत की दहेज मृत्यु कारित की है । (पैरा 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828 : **कालियापेरूमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	10
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 80 : **हीरा लाल और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ।	11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 684.

1999 की दांडिक अपील सं. 471 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चण्डीगढ़ की एकल न्यायपीठ के तारीख 9 दिसंबर, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री पी. विनय कुमार
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री जयंत के. सूद (अपर महाधिवक्ता), उजस कुमार, चिराग खुराना, विशाल दबास और कुलदीप सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 1999 की दांडिक अपील सं. 471 में पंजाब और हरियाणा, चण्डीगढ़ की एकल न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए तारीख 9 दिसंबर, 2009 के उस निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने तारीख 12 मई, 1997 के सेशन मामला सं. 14 में अपर सेशन न्यायाधीश, मन्सा द्वारा दिए गए तारीख 23 अप्रैल, 1999 के निर्णय और आदेश की पुष्टि की है । सेशन न्यायाधीश ने उक्त निर्णय द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्ध किया है और उसे 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 1000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर दो मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया है ।

2. अपीलार्थी के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्य, अर्थात् कुलदीप सिंह, दर्शना देवी और प्रवीण कुमार का भी न्यायालय के समक्ष अभियुक्तों के रूप में विचारण किया गया । इन अभियुक्तों को उन पर लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया और इस संबंध में राज्य द्वारा कोई भी अपील फाइल नहीं की गई । परमजीत कौर और स्वर्णजीत कौर दो अन्य अभियुक्त हैं जो (उस समय) किशोर अवस्था में थे अतः उनके मामले अलग कर दिए गए थे ।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि अमरजीत कौर (मृतका) का विवाह 6/7 मास पूर्व अर्थात् 3 मार्च, 1997 को अभियुक्त देविन्दर सिंह (इस मामले में का अपीलार्थी) के साथ हुआ था । बचित्तर सिंह का पुत्र तेजा सिंह इस विवाह में मध्यस्थ था । विवाह के समय पर, अमरजीत के माता-पिता द्वारा उनकी हैसियत के अनुसार पर्याप्त दहेज दिया गया था किंतु विवाह के पश्चात् अमरजीत के ससुराल वालों ने और अधिक दहेज लाने के लिए उसे यातना देना और उस पर दबाव डालना आरंभ कर दिया । अमरजीत कौर के भाई अर्थात् शिकायतकर्ता जसविन्दर सिंह और तेजा सिंह (मध्यस्थ) ने अमरजीत के ससुराल वालों से दहेज को लेकर मृतका को तंग करने और उसे यातना देने से मना किया किंतु वे मृतका के साथ दुर्व्यवहार करते हुए उसे तंग करते रहे ।

तारीख 9 फरवरी, 1997 को शिकायतकर्ता जसविन्दर सिंह का विवाह हुआ था । मृतका और उसके पति देविन्दर सिंह इस विवाह में सम्मिलित हुए । विवाह के पश्चात्, देविन्दर सिंह ने इस आधार पर शिकायतकर्ता से 20,000/- रुपए की मांग की कि जसविन्दर सिंह को

देविन्दर सिंह की अपेक्षाकृत अधिक दहेज मिला है । मृतका को उसकी ससुराल में बनाए रखने के लिए जसविन्दर सिंह ने 20,000/- रुपए उधार लिए और उसने वह रकम अपीलार्थी को दे दी । किंतु मृतका के ससुराल वाले संतुष्ट नहीं हुए और वे दहेज की और अधिक मांग करते रहे ।

तारीख 2 मार्च, 1997 को मृतका ने जसविन्दर सिंह को टेलीफोन से यह बताया कि उसके ससुराल वाले उसे दहेज लाने के लिए यातना देते हैं और तंग करते हैं । इस संदेश के अनुसार, जसविन्दर सिंह और उसके मामा भोला सिंह मृतका की कुशलता जानने के लिए बुढलाडा गए । मृतका ने उन्हें यह बताया कि उसके ससुराल वाले और अधिक दहेज के लिए उसे तंग कर रहे हैं । वे यह कहकर वापस आ गए कि वे अगले दिन कुछ सम्मानित व्यक्तियों के साथ इस विवाद को तय करने के लिए आएंगे ।

तारीख 3 मार्च, 1997 को लगभग 5.30 बजे अपराह्न में, जसविन्दर सिंह, उसके मामा भोला सिंह और तेजा सिंह अभियुक्त देविन्दर सिंह के घर गए । जब वे मकान के दरवाजे के निकट थे तब उन्होंने छत पर से चीख-पुकार की आवाज आती हुई सुनी । घर में प्रवेश करने के पश्चात् जब वे मकान की छत पर जा रहे थे तब उन्होंने देखा की दर्शना देवी यह कह रही थी कि अमरजीत कौर को नहीं छोड़ना । उसका काम-तमाम कर दिया जाए । वे सभी मकान की छत पर गए और उन्होंने कुलदीप सिंह, अभियुक्त देविन्दर सिंह, दर्शना देवी, प्रवीन कौर, परमजीत कौर और स्वर्णजीत कौर को सीढ़ियों से भू-तल की ओर आते हुए देखा । अमरजीत कौर का जला हुआ शव शौचालय में पड़ा हुआ था । प्लास्टिक का डिब्बा और माचिस शव के निकट पड़े हुए थे । यह अभिकथन किया गया है कि अमरजीत कौर के ससुराल वालों ने उसको आग में जलाकर उसकी हत्या की है । तेजा सिंह को शव पर नजर रखने के लिए तैनात किया गया और जसविन्दर सिंह तथा भोला सिंह रिपोर्ट दर्ज कराने चले गए । उपनिरीक्षक रूपिन्दर सिंह सिविल अस्पताल बुढलाडा के चौराहे के निकट शिकायतकर्ता को मिला जहां पर जसविन्दर सिंह का कथन (प्रदर्श पी.डी.) अभिलिखित किया गया । पृष्ठांकन करने के पश्चात् वह कथन पुलिस थाने भेज दिया गया जिसके आधार पर औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई ।

तारीख 3 मार्च, 1997 को अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । अन्वेषण पूरा किए जाने के पश्चात् चालान प्रस्तुत किया गया । अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 304ख/149 के अधीन आरोपित किया गया जिस पर अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने

की मांग की ।

4. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में चार साक्षियों की परीक्षा कराई । दस्तावेजी साक्ष्यों को भी प्रदर्शित किया गया । प्रतिरक्षा पक्ष ने भी सात साक्षियों की परीक्षा कराई । अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के कथन अभिलिखित किए गए । अभियुक्तों ने अभियोजन पक्ष के सभी अभिकथनों से इनकार किया और निर्दोष होने का अभिवाक् किया । अभियुक्त-अपीलार्थी ने यह प्रतिरक्षा ली है कि वह नपुंसक है और इस कारण से अमरजीत कौर अवसादग्रस्त हो गई थी । अमरजीत कौर की सौतेली माता भी उसे तंग करती थी । इन कारणों से उसने आत्महत्या की थी । आक्षेपित निर्णय का खंडन करने के लिए अपीलार्थी के काउंसेल ने भी यही अभिवाक् किया है ।

5. मृतका के भाई जसविन्दर सिंह (अभि. सा. 2) ने यह कथन किया है कि अमरजीत कौर का विवाह अपीलार्थी देविन्दर सिंह के साथ जुलाई, 1996 में हुआ था । कुलदीप सिंह, दर्शना देवी और प्रवीण क्रमशः अपीलार्थी के पिता, माता और बहिन हैं । परमजीत कौर और स्वर्णजीत कौर भी अपीलार्थी की बहिनें हैं । तेजा सिंह, अमरजीत कौर और देविन्दर सिंह के विवाह में मध्यस्थ बना था । उन्होंने मृतका के विवाह पर अपनी क्षमता से अधिक धन खर्च किया था । मृतका के अपने पति और ससुराल वालों के साथ लगभग दो मास तक सौहार्द संबंध बने रहे थे । इसके पश्चात् मृतका के ससुराल वालों ने ऐसा कोई न कोई बहाना लेकर उसके साथ दुर्व्यवहार करना आरंभ कर दिया कि मृतका के माता-पिता ने स्कूटर नहीं दिया है और जो कपड़े दहेज में दिए गए हैं वे अच्छे नहीं हैं । अभियुक्त और अधिक दहेज मांग रहे थे । वह अपने मामा अर्थात् भोला सिंह (अभि. सा. 3) के साथ एक या दो बार मृतका की ससुराल गया और उसने उनसे निवेदन किया कि चूंकि वे निर्धन हैं इसलिए वे अधिक दहेज नहीं दे सकते । किंतु अपीलार्थी और उसके परिवार वाले इससे सहमत नहीं हुए । अभि. सा. 2 का विवाह तारीख 9 फरवरी, 1997 को हुआ था और देविन्दर सिंह तथा अमरजीत कौर जसविन्दर के विवाह में सम्मिलित हुए थे । उसके विवाह के पश्चात् अभियुक्त देविन्दर सिंह ने यह कथन किया कि शिकायतकर्ता जसविन्दर सिंह को उससे (देविन्दर से) अधिक दहेज दिया गया था और देविन्दर ने शिकायतकर्ता से धन की मांग की । शिकायतकर्ता ने अपने मामा से 20,000/- रुपए लिए और उसने अभियुक्त देविन्दर सिंह को दिए तथापि, अपीलार्थी संतुष्ट नहीं हुआ और वह पुनः और अधिक दहेज

की मांग करने लगा । तारीख 2 मार्च, 1997 को, उसे उसकी बहिन ने टेलीफोन पर बताया कि दहेज के संबंध में उसके ससुराल वालों द्वारा उसके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है । इसके पश्चात् अभि. सा. 2 ने गोनियाना से अपने मामा को अपने साथ लिया और बुढलाडा स्थित अभियुक्त के मकान पर गया । अभियुक्त ने अपीलार्थी से और अधिक धन की मांग की । इसके पश्चात् अभि. सा. 2 ने अभियुक्त को बताया कि वह उनसे अगले दिन मिलेगा । तारीख 3 मार्च, 1997 को अभि. सा. 2 अपने मामा भोला सिंह और मध्यस्थ तेजा सिंह के साथ अभियुक्त के घर गया । जब वे घर के दरवाजे पर पहुंचे उन्होंने सीढ़ियों से आती हुई चीख-पुकार सुनी । जब वे दरवाजे में प्रवेश कर ही रहे थे कि मृतका की सास ने चीखकर यह कहा कि आज मृतका को खत्म कर दो । इसके पश्चात् वे सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर गए । जब वे छत पर गए तब कुलदीप सिंह, देविन्दर सिंह, दर्शना देवी, प्रवीण कौर, स्वर्णजीत कौर और परमजीत कौर दौड़ते हुए नीचे आ रहे थे । उन्होंने अमरजीत कौर को शौचालय में दाह क्षतियों के साथ मृत पड़ा हुआ देखा । उसके शव के निकट एक प्लास्टिक का डिब्बा और माचिस भी पड़े हुए थे । तेजा सिंह को शव की रखवाली के लिए छोड़ा गया और जसविन्दर अपने मामा के साथ पुलिस थाने गया । पुलिस उन्हें अस्पताल के निकट मिली जहां पर उसका कथन प्रदर्श पी.डी. अभिलिखित किया गया । इसके पश्चात् पुलिस अभियुक्त के मकान पर आई और उन्होंने ज्ञापन पी.ई. के अनुसार प्लास्टिक का डिब्बा (प्रदर्श पी-3) माचिस (प्रदर्श पी-4) और कपड़े में लपेटकर राख (प्रदर्श पी-5) कब्जे में ली और ज्ञापन पी.ई. पर अभि. सा. 2 के हस्ताक्षर लिए गए । अभि. सा. 2 ने प्रतिपरीक्षा के दौरान इस सुझाव से इनकार किया है कि उसके विवाह के पश्चात् वह बुढलाडा नहीं गया था । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि वह वहां दो या तीन बार गया था । तथापि, वह टेलीफोन कॉल की सही तारीख नहीं बता सका किंतु उसने यह कथन किया है कि मृतका ने उसे 10/11 बजे पूर्वाह्न में टेलीफोन किया था और टेलीफोन कॉल प्राप्त करने वाले दिन ही वह और उसके मामा बुढलाडा गए थे । इस साक्षी ने इस सुझाव से इनकार किया है कि अभियुक्त ने उसके पिता के भोग-आयोजन के पूर्व दहेज की मांग नहीं की थी ।

6. अमरजीत कौर के मामा भोला सिंह (अभि. सा. 3) ने यह अभिकथन किया है कि अमरजीत का विवाह उसकी मृत्यु के लगभग सात मास पूर्व अभियुक्त देविन्दर सिंह के साथ हुआ था । अभियुक्त देविन्दर सिंह दहेज के रूप में मोटरसाइकिल की मांग किया करता था । मृतका के ससुराल वाले उसके साथ दुर्व्यवहार किया करते थे । तारीख 2 मार्च,

1997 को वह और उसकी बहिन का पुत्र अर्थात् शिकायतकर्ता (अभि. सा. 2) बुढलाडा स्थित अभियुक्त के मकान पर अमरजीत कौर से मिलने गए, जहां पर अमरजीत कौर ने उन्हें बताया कि उसके ससुराल वाले उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं । वे यह कहकर उस घर से चले आए कि वे कुछ समझदार व्यक्तियों के साथ पुनः आएंगे । वे तारीख 3 मार्च, 1997 को तेजा सिंह के साथ बुढलाडा स्थित अभियुक्त के मकान पर पुनः गए । उन्होंने दरवाजे पर मकान की छत से आती हुई चीखने की आवाज सुनी । इसके पश्चात् वे दौड़ते हुए सीढ़ियों से ऊपर गए । जब वे ऊपर पहुंचे उन्होंने देखा कि अमरजीत कौर शौचालय में मृत पड़ी हुई है और उसके पूरे शरीर पर दाह क्षतियां हैं । शव के निकट प्लास्टिक का डिब्बा और माचिस पड़ी हुई थी । मामले की रिपोर्ट पुलिस थाने में की गई । उन्हें पुलिस अस्पताल के सामने मिली । अभि. सा. 3 अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान देविन्दर सिंह के पड़ोसियों के ठीक-ठीक ब्यौरे नहीं दे सका । तथापि, पड़ोसियों के ऐसे ब्यौरे न दिए जाने पर अभि. सा. 3 के कथन को अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता है ।

7. डा. कश्मीर सिंह (अभि. सा. 1) ने शवपरीक्षण किया है । उन्होंने यह रिपोर्ट दी है कि मृत्यु का कारण श्वासारोध जो 95 से 100 प्रतिशत दाह क्षतियों के परिणामस्वरूप हुआ है और ये क्षतियां मृत्यु पूर्व प्रकृति की हैं और प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं । क्षतियां कारित होने के तत्काल पश्चात् ही मृत्यु हुई है और मृत्यु होने के 24 घंटों के भीतर ही शवपरीक्षण किया गया है । प्रदर्श पी.ए. शवपरीक्षण की एक प्रति है ।

8. पुलिस उपनिरीक्षक रूपिन्दर कुमार (अभि. सा. 4) अन्वेषक अधिकारी है । इस साक्षी ने अभियुक्त के मकान से प्लास्टिक के डिब्बे और माचिस की बरामदगी के संबंध में साक्ष्य दिया है ।

9. दंड संहिता की धारा 304ख दहेज मृत्यु से संबंधित है जो निम्न प्रकार है :–

> "**304ख दहेज मृत्यु** – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए,

या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।

(2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।"

10. उक्त धारा के प्रयोजन के लिए निम्न संघटकों के साबित किए जाने पर ही उपधारणा की जा सकती है :–

(क) स्त्री की मृत्यु दाह क्षतियों या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा कारित हुई हो,

(ख) उक्त मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर हुई हो,

(ग) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो,

(घ) ऐसी क्रूरता या इस प्रकार तंग किया जाना दहेज की किसी भी प्रकार की मांग के लिए या उसके संबंध में हो,

(ङ) उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ ऐसी क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

इस संबंध में हम **कालियापेरूमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट कर रहे हैं ।

11. **हीरा लाल और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख में प्रयोग किए गए "मृत्यु के कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति पर विचार किया है जो निम्न प्रकार है :–

"8. धारा 304ख, जो दहेज मृत्यु के संबंध में है, निम्नलिखित

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828.

[2] (2003) 8 एस. सी. सी. 80.

रूप में है –

"**304ख दहेज मृत्यु** – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।

(2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।"

इस धारा के उपबंध वहां लागू होंगे जहां स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर दाह क्षतियों या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है और यह दर्शाया गया है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति या पति के किसी भी नातेदारों द्वारा दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । दंड संहिता की धारा 304ख के लागू होने के लिए आवश्यक संघटक निम्न प्रकार हैं –

(i) स्त्री की मृत्यु दाह क्षतियों या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा कारित की जानी चाहिए,

(ii) उक्त मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर होनी चाहिए,

(iii) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की जानी चाहिए या उसे तंग किया जाना चाहिए,

(iv) ऐसी क्रूरता या इस प्रकार तंग किया जाना दहेज की

किसी भी प्रकार की मांग के लिए या उसके संबंध में किया जाना चाहिए,

(v) उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ ऐसी क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख भी वर्तमान मामले के लिए सुसंगत है । दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख दोनों को ही, जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है, दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम (1986 का 43) में निगमित किया गया है ताकि दहेज मृत्यु जैसी बढ़ती हुई बुराई को रोका जा सके । साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख निम्न प्रकार है –

"**धारा 113ख दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा** – जब प्रश्न यह है कि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया गया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए 'दहेज मृत्यु' का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 304ख में है ।"

भारतीय विधि आयोग ने तारीख 10 अगस्त, 1988 की अपनी 21वीं रिपोर्ट में 'दहेज मृत्यु और विधि सुधार' पर व्यापक रूप से दोनों उपबंधों के निगमित किए जाने के संबंध में विश्लेषण किया है । पूर्व-विद्यमान विधि में आने वाली रुकावटों को दृष्टिगत करते हुए दहेज से संबंधित मृत्यु को साबित करने के लिए साक्ष्य जुटाने में विधान-मंडल ने कतिपय संघटकों के साबित किए जाने के आधार पर दहेज मृत्यु की उपधारणा से संबंधित ऐसे उपबंध को निगमित करना उचित समझा है । इस पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए साक्ष्य अधिनियम में उपधारणात्मक धारा 113ख निगमित की गई है । दंड संहिता की धारा 304ख में 'दहेज मृत्यु' की परिभाषा और साक्ष्य अधिनियम की उपधारणात्मक धारा 113ख की भाषा के अनुसार आवश्यक संघटकों में एक संघटक यह है कि संबंधित स्त्री के साथ उसकी 'मृत्यु के

कुछ पूर्व' 'दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में' उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । धारा 113ख के अधीन उपधारणा विधि की उपधारणा है । इस धारा में उल्लिखित संघटकों को साबित किए जाने पर, न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह यह उपधारित करे कि अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की है । यह उपधारणा निम्न संघटकों के साबित किए जाने पर ही की जा सकती है –

(1) न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने स्त्री की दहेज मृत्यु कारित की है । (इसका यह अर्थ हुआ कि उपधारणा केवल तब की जा सकती है जब अभियुक्त का विचारण दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए किया जा रहा है ।)

(2) स्त्री के पति या उसके नातेदारों द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

(3) दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में ऐसी क्रूरता की गई हो या तंग किया गया हो ।

(4) स्त्री की 'मृत्यु के कुछ पूर्व' उसके साथ क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

12. वर्तमान मामले में, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथन से यह स्पष्ट हो गया है कि मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात मास के भीतर हुई है । स्वीकृततः, मृतका की मृत्यु दाह क्षतियों के कारण अर्थात् सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है । अब हमें अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह विचार करना होगा कि क्या शेष संघटकों का समाधान हुआ है या नहीं ।

13. अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथन विशेष हैं क्योंकि वे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं । उन्होंने अपने कथनों में विशेष रूप से दहेज की मांग को लेकर तंग किए जाने के संबंध में उल्लेख किया है । मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात मास के भीतर हुई है । उसने भी तंग किए जाने के बारे में टेलीफोन द्वारा शिकायत की है । इस प्रकार अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि आहत की मृत्यु के कुछ पूर्व उसे दहेज के लिए तंग किया गया था ।

14. अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए, जैसाकि ऊपर चर्चा की गई है, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियोजन पक्ष दंड संहिता की धारा 304ख के संघटकों को साबित करने में सफल हुआ है । विचारण न्यायालय ने यह ठीक ही उपधारित किया है कि अभियुक्त ने आहत की दहेज मृत्यु कारित की है ।

15. हमें इस अपील में कोई सार दिखाई नहीं देता है और तदनुसार यह खारिज की जाती है । अपीलार्थी को दंडादेश का शेष भाग भोगने के लिए तत्काल अभिरक्षा में लिए जाने का निदेश दिया जाता है । उसके बंध-पत्र रद्द किए जाते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

[2014] 3 उम. नि. प. 456

बलविंदर सिंह

बनाम

नेशनल फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड और अन्य

7 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100, 101 और 103 – द्वितीय अपील – उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील ग्रहण करते समय विधि का सारवान् प्रश्न न बनाया जाना – द्वितीय अपील न्यायालय को विधि का सारवान् प्रश्न बनाए बिना द्वितीय अपील को ग्रहण या विनिश्चय करने की कोई अधिकारिता नहीं है, इसलिए उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट निर्णय और डिक्री को अपास्त करके गंभीर गलती की है जिसे अपास्त करना उचित होगा ।

वादी-अपीलार्थियों को प्रत्यर्थी-नेशनल फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड की सेवा में नियुक्त किया गया था । एक अपीलार्थी ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध यह घोषणा करने के लिए और यह आज्ञापक व्यादेश जारी करने के लिए एक वाद फाइल किया कि वह अपनी परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूर्ण

करने की तारीख से स्टेनो क्लर्क के रूप में स्थायी किए जाने और वेतन-वृद्धि, बोनस, चिकित्सा भत्ते, गृह किराए आदि का हकदार है । अन्य वादी-अपीलार्थी द्वारा प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध यह घोषणा करने के लिए एक अलग वाद फाइल किया गया कि वह कनिष्ठ फील्ड सहायक के वेतन-मान में और प्रायिक भत्ते सहित वेतन प्राप्त करने का हकदार है । विद्वान् सिविल न्यायाधीश, सिरसा, हरियाणा द्वारा तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् वाद मंजूर किए गए । सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील अपर जिला न्यायाधीश, सिरसा द्वारा खारिज कर दी गई । विचारण न्यायालय द्वारा पारित और अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट उपर्युक्त दोनों निर्णयों और डिक्रियों को प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । अन्य कर्मचारियों के मामले में पारित इसी प्रकार के निर्णय और डिक्री को भी अलग से चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय ने तारीख 2 अगस्त, 2011 के सामान्य निर्णय द्वारा वादी-अपीलार्थियों के पक्ष में पारित किए गए निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हुए प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर कीं । उच्च न्यायालय के निर्णय को उच्चतम न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी गई कि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील विधि का सारवान् प्रश्न बनाए बिना ग्रहण की थी । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी, जो उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी था, ने उस समय विधि का कोई सारवान् प्रश्न नहीं उठाया था जब अपील का ज्ञापन फाइल किया गया था । बाद में, उन द्वितीय अपीलों में सिविल प्रकीर्ण आवेदन फाइल करके कई विधि के सारवान् प्रश्न उठाए थे जिनमें तथ्य के प्रश्न या तथ्य और विधि के मिश्रित प्रश्न भी सम्मिलित थे । द्वितीय अपील को ग्रहण करने के समय यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि अपील के ज्ञापन के पैरा 13 में विधि का सारवान् प्रश्न उठाया गया है, तो भी उच्च न्यायालय ने न तो कोई विधि का सारवान् प्रश्न बनाया और न ही यह विनिश्चित किया कि उठाए गए विधि के छह प्रश्नों में से द्वितीय अपील को ग्रहण करने के लिए उसके अवधारण हेतु कौन से विधि के सारवान् प्रश्न हैं । यहां तक कि आक्षेपित निर्णय में भी विद्वान् न्यायाधीश ने अपील का विनिश्चय करने के लिए विधि के किसी सारवान् प्रश्न को निर्दिष्ट नहीं किया है । स्पष्ट तौर पर, यह इसलिए निर्दिष्ट नहीं किया गया है क्योंकि द्वितीय अपील को ग्रहण करने के समय विधि का कोई सारवान् प्रश्न विरचित ही नहीं किया गया था, इसलिए

उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा यथा अभिपुष्ट निर्णय और डिक्री को विधि का कोई सारवान् प्रश्न विरचित किए बिना उलट कर गंभीर गलती की है । क्योंकि द्वितीय अपील न्यायालय को प्रारंभिक प्रक्रम पर विधि का सारवान् प्रश्न बनाए बिना, जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अत्यावश्यक है, द्वितीय अपील को ग्रहण या विनिश्चय करने की कोई अधिकारिता नहीं है, इसलिए आक्षेपित सामान्य निर्णय को अपास्त करने के सिवाय न्यायालय के पास कोई अन्य विकल्प नहीं है । (पैरा 19 और 20)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2012] (2012) 4 एस. सी. सी. 344 :
हरदीप कौर बनाम **मलकियत कौर** ; 18

[2011] (2011) 9 एस. सी. सी. 684 :
उमेरखान बनाम **बिस्मिलाबी** उर्फ **बाबू लाल शेख** । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 6013. (इसके साथ 2014 की सिविल अपील सं. 6015 भी सुनी गई ।)

2003 के आरएसए सं. 3157 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 2 अगस्त, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अरविंद मिनोचा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री पल्लव सिशोदिया, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ घनश्याम जोशी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – इजाजत दी गई ।

2. ये अपीलें वादी-अपीलार्थियों द्वारा 2003 के आरएसए सं. 3127 और 2003 के आरएसए सं. 5214 आदि में तारीख 2 अगस्त, 2011 को पारित किए गए सामान्य निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं । आक्षेपित निर्णय द्वारा द्वितीय अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित और

प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट किए गए निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया ।

3. वादी-अपीलार्थियों को प्रत्यर्थी-नेशनल फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड की सेवा में नियुक्त किया गया था । अपीलार्थी-बलविंदर सिंह को तारीख 3 अप्रैल, 1991 को कनिष्ठ स्टेनो क्लर्क के रूप में नियुक्त किया गया था । अन्य अपीलार्थी-रामस्वरूप को तारीख 27 अप्रैल, 1991 को फील्ड सहायक के रूप में नियुक्त किया गया था । वादी-अपीलार्थी बलविंदर सिंह ने तारीख 16 अगस्त, 1999 को प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध यह घोषणा करने के लिए और यह आज्ञापक व्यादेश जारी करने के लिए एक वाद फाइल किया कि वह तारीख 8 सितम्बर, 1991 से, अर्थात् वह तारीख जिसको उसने छह मास की परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूर्ण की थी, कनिष्ठ स्टेनो क्लर्क के रूप में स्थायी किए जाने और वेतन-वृद्धि, बोनस, चिकित्सा भत्ते, गृह किराए आदि का हकदार है ।

4. वादी-अपीलार्थी रामस्वरूप द्वारा प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध यह घोषणा करने के लिए एक अलग वाद फाइल किया गया कि वह कनिष्ठ फील्ड सहायक के वेतनमान में और प्रायिक भत्ते सहित वेतन प्राप्त करने का हकदार है और यह कि प्रत्यर्थी की 1,800/- रुपए प्रति माह संदाय करने की कार्रवाई अवैध, अकृत और शून्य है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए ।

5. विद्वान् सिविल न्यायाधीश, सिरसा, हरियाणा ने तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् वादी-अपीलार्थी बलविंदर सिंह के पक्ष में 1999 के वाद सं. 359 सिविल में तारीख 12 दिसम्बर, 2000 के निर्णय और डिक्री द्वारा वाद मंजूर किया । सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील अपर जिला न्यायाधीश, सिरसा, हरियाणा द्वारा 2001 की सिविल अपील सं. 21 में तारीख 7 अप्रैल, 2003 के निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज कर दी गई ।

इसी प्रकार, अपीलार्थी-रामस्वरूप द्वारा फाइल किया गया वाद मंजूर किया गया और 1997 के सिविल वाद सं. 1267 में तारीख 3 सितम्बर, 2001 को पारित निर्णय और डिक्री द्वारा उसके पक्ष में डिक्री किया गया । प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई अपील सिविल अपील सं. 94/9.10.2001/29.10.2002 में तारीख 7

अगस्त, 2003 को पारित निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज कर दी गई ।

6. विचारण न्यायालय द्वारा पारित और अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट उपर्युक्त दोनों निर्णयों और डिक्रियों को प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा क्रमशः 2003 के आरएसए सं. 3127 और 2003 के आरएसए सं. 5646 में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । अन्य कर्मचारियों के मामले में पारित इसी प्रकार के निर्णय (निर्णयों) और डिक्री को भी अलग आरएसए फाइल करके चुनौती दी गई । उपर्युक्त सभी आरएसए की एकसाथ सुनवाई की गई और उच्च न्यायालय ने तारीख 2 अगस्त, 2011 के सामान्य निर्णय द्वारा वादी-अपीलार्थियों के पक्ष में पारित किए गए निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हुए प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर कीं । संबद्ध द्वितीय अपीलों में कुछ निदेश जारी किए गए ।

7. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने सामान्य निर्णय को केवल इस आधार पर चुनौती दी है कि उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालयों के निष्कर्ष को विधि का कोई सारवान् प्रश्न विरचित किए बिना उलट दिया । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने विधि का सारवान् प्रश्न विरचित करने के पश्चात् द्वितीय अपीलों का प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के पक्ष में विनिश्चय किया था ।

8. हमने पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

9. आक्षेपित निर्णय से हमने यह पाया है कि विद्वान् न्यायाधीश ने यद्यपि विभिन्न अपीलें मंजूर की हैं, किंतु विधि के किसी ऐसे सारवान् प्रश्न को निर्दिष्ट नहीं किया है जो अपीलों को ग्रहण करते समय या सुनवाई के समय विरचित किया गया था ।

10. प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने द्वितीय अपीलों के आदेश पत्रों का अवलंब लिया और अपीलों के ज्ञापन को यह बताने के लिए निर्दिष्ट किया कि द्वितीय अपीलों को ग्रहण करते समय विधि का सारवान् प्रश्न विरचित किया गया था । संबंधित द्वितीय अपीलों के अवेक्षा किए गए आदेश पत्रों को निर्दिष्ट करना वांछनीय है और इनका नीचे उल्लेख किया जाता है ।

11. 2003 के आरएसए सं. 3127 के अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि अपील के ज्ञापन में विधि के किसी सारवान् प्रश्न का उल्लेख नहीं है । उक्त कारण के लिए प्रत्यर्थियों की ओर से, जो उच्च न्यायालय के समक्ष

अपीलार्थी थे, विद्वान् काउंसेल ने तारीख 2 जुलाई, 2010 को यह दलील दी कि विधि का सारवान् प्रश्न विरचित नहीं किया गया है जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की आज्ञापक अपेक्षा है और तारीख 2 जुलाई, 2010 को विधि का सारवान् प्रश्न तैयार करने और प्रस्तुत करने के लिए समय देने की ईप्सा की । वह आदेश निम्नलिखित है :–

> "अपीलार्थियों की ओर से काउंसेल ने यह दलील दी कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की आज्ञापक अपेक्षा के अनुसार विधि के सारवान् प्रश्न तैयार और प्रस्तुत नहीं किए गए हैं । उसने विधि के सारवान् प्रश्न तैयार करने और प्रस्तुत करने के लिए तारीख की ईप्सा की है । अनुरोध मंजूर किया जाता है ।
>
> न्याय के हित में, मामला दलीलों के लिए तारीख 16 जुलाई, 2010 के लिए स्थगित किया जाता है ।"

12. तारीख 16 जुलाई, 2010 को न्यायालय द्वारा किए गए कतिपय प्रश्नों का उत्तर देने के लिए और अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल के अनुरोध पर मामला स्थगित किया गया । वह आदेश निम्नलिखित रूप में है :–

> "इस न्यायालय के अवधारण के लिए वर्तमान अपील को उद्भूत करने वाले प्रस्तावित विधि के सारवान् प्रश्नों को पहले ही अपील के आधारों के पैरा 13 में सम्मिलित किया गया है ।
>
> अपीलार्थियों की ओर से काउंसेल ने जब मामले में बहस शुरू की तो उनसे कतिपय प्रश्न किए गए । उसने उपर्युक्त प्रश्नों का उचित रूप से उत्तर देने की दृष्टि से अभिलेख का परिशीलन करने के लिए तारीख की ईप्सा की है । अनुरोध मंजूर किया जाता है ।
>
> न्याय के हित में मामला दलीलों के लिए तारीख 23 जुलाई, 2010 के लिए स्थगित किया जाता है ।"

13. उक्त 2003 के आरएसए सं. 3127 में अपील के आधार फाइल किए गए थे । द्वितीय अपील में बाद में फाइल किए गए अपील के आधारों के पैरा 13 में निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न उठाए गए थे और यह सुझाव दिए गए थे :–

> "इस माननीय न्यायालय के विचार के लिए निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न उद्भूत होते हैं –

(i) क्या प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल किया गया वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है ?

(ii) क्या प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल किया गया वाद न्यायालय फीस के प्रयोजन के लिए अवमूल्यित है ?

(iii) क्या सिविल न्यायालय, सिरसा को प्रत्यर्थी-वादी द्वारा संस्थित किए गए वाद का विचारण करने की अधिकारिता है ?

(iv) क्या प्रत्यर्थी-वादी की सेवाएं इस तथ्य को देखते हुए कि उसकी नियुक्ति अवैध थी नियमित की जानी चाहिएं ?

(v) क्या प्रत्यर्थी-वादी की सेवाएं अवैध थीं ?

(vi) क्या विद्वान् निचले न्यायालयों ने नियुक्ति पत्र प्रदर्श पी-1 का गलत अर्थान्वयन किया है ?"

14. उच्च न्यायालय ने अपने तारीख 11 जुलाई, 2003 के आदेश द्वारा 2003 के आरएसए सं. 3127 को ग्रहण किया । उक्त आदेश निम्नलिखित है :–

"2003 का आरएसए सं. 3127

हाजिर :– अपीलार्थियों की ओर से श्री अशोक अग्रवाल, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ श्री विक्रम अग्रवाल, अधिवक्ता

अपील के ज्ञापन के पैरा सं. 13 में यथा उल्लिखित विधि के सारवान् प्रश्न इस न्यायालय के विचार के लिए उद्भूत होते हैं :

ग्रहण की जाती है ।

डिक्री का निष्पादन रोका जाता है ।

हस्ता/-

(हेमंत गुप्ता)
न्यायाधीश

11.07.2003"

अन्य द्वितीय अपीलों के विषय में भी यही स्थिति है ।

15. पूर्वोक्त आदेश पत्रों और अपीलों के ज्ञापनों से निम्नलिखित तथ्य

प्रकट होते हैं :–

"(क) द्वितीय अपील का ज्ञापन फाइल करते समय विधि का कोई सारवान् प्रश्न नहीं उठाया गया था । सारवान् प्रश्न बाद में विभिन्न आरएसए में सिविल प्रकीर्ण आवेदन फाइल करके फाइल किए गए थे ।

(ख) उच्च न्यायालय ने हालांकि अपील के आधारों के पैरा 13 में वर्णित विधि के विभिन्न सारवान् प्रश्नों की अवेक्षा की थी, फिर भी विधि का कोई सारवान् प्रश्न विरचित किए बिना द्वितीय अपीलों को ग्रहण किया ।"

16. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100, 101 और 103 द्वितीय अपील और तथ्य के विवाद्यकों का अवधारण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति के संबंध में हैं । ये धाराएं निम्नलिखित हैं :–

"**धारा 100. द्वितीय अपील** – (1) उसके सिवाय जैसा इस संहिता के पाठ में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री की उच्च न्यायालय में अपील हो सकेगी, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है ।

(2) एकपक्षीय पारित अपील डिक्री की अपील इस धारा के अधीन हो सकेगी ।

(3) इस धारा के अधीन अपील में अंतर्वलित विधि के उस सारवान् प्रश्न का अपील के ज्ञापन में प्रमिततः कथन किया जाएगा ।

(4) जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि किसी मामले में सारवान् विधि का प्रश्न अंतर्वलित है तो वह उस प्रश्न को बनाएगा ।

(5) अपील इस प्रकार बनाए गए प्रश्न पर सुनी जाएगी और प्रतिवादी की अपील की सुनवाई में यह तर्क करने की अनुज्ञा दी जाएगी कि ऐसे मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित नहीं है :

परन्तु इस धारा की किसी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह, विधि के किसी अन्य सारवान् प्रश्न पर जो न्यायालय के द्वारा नहीं बनाया गया है, न्यायालय का यह समाधान हो जाने पर

कि उस मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित है, न्यायालय की कारणों को लेखबद्ध करके अपील सुनने की शक्ति वापस लेती है या उसे न्यून करती है ।"

"**धारा 101. द्वितीय अपील का किसी अन्य आधार पर न होना –** कोई भी द्वितीय अपील धारा 100 में वर्णित आधारों पर होगी, अन्यथा नहीं ।"

"**धारा 103. तथ्य-विवाद्यकों का अवधारण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति –** यदि अभिलेख में का साक्ष्य पर्याप्त हो तो किसी भी द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ऐसी अपील के निपटारे के लिए आवश्यक कोई विवाद्यक अवधारित कर सकेगा, जो –

(क) निचले अपील न्यायालय द्वारा या प्रथम बार के न्यायालय और निचले अपील न्यायालय दोनों द्वारा अवधारित नहीं किया गया है, अथवा

(ख) धारा 100 में यथानिर्दिष्ट विधि के ऐसे प्रश्न के विनिश्चय के कारण ऐसे न्यायालय या न्यायालयों द्वारा गलत तौर पर अवधारित किया गया है ।"

17. इस प्रश्न पर कि क्या उच्च न्यायालय प्रारंभिक प्रक्रम पर ही विधि का सारवान् प्रश्न गठित करने के लिए आबद्ध है, इस न्यायालय द्वारा **उमेरखान** बनाम **बिस्मिलाबी** उर्फ **बाबू लाल शेख**[1] वाले मामले में विचार किया गया था । उक्त मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"11. हमारे मत में, उच्च न्यायालय की किसी द्वितीय अपील की सुनवाई करने की अधिकारिता ही विधि के सारवान् प्रश्न के गठन पर आधारित है । यदि किसी द्वितीय अपील की सुनवाई की जाती है और विधि के सारवान् प्रश्न का गठन किए बिना वह निर्णय और डिक्री उलट दी जाती है जिसके विरुद्ध अपील की गई है तो उच्च न्यायालय का निर्णय स्पष्ट तौर पर अवैध हो जाता है । उच्च न्यायालय की संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपीली अधिकारिता धारा 96 के अधीन अपीली अधिकारिता के समान नहीं है ; यह अधिकारिता ऐसे सारवान् प्रश्न या विधि के प्रश्न तक निर्बंधित है

[1] (2011) 9 एस. सी. सी. 684.

जो उस निर्णय और डिक्री से उद्‌भूत हो जिसके विरुद्ध अपील की गई है । विधि की दृष्टि से, उच्च न्यायालय द्वारा कोई द्वितीय अपील उसके केवल इस समाधान पर ग्रहणीय है कि मामले में विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है और उसका गठन किया जाना है । संहिता की धारा 100 में यह उपबंधित है कि द्वितीय अपील इस प्रकार गठित किए गए प्रश्न पर सुनी जाएगी । तथापि, उच्च न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह विधि के सारवान् प्रश्न का पुनर्गठन करे या नए सिरे से विधि के सारवान् प्रश्न की विरचना करे या यह अधिनिर्धारित करे कि द्वितीय अपील की सुनवाई के समय विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित नहीं है किंतु उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 100 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए द्वितीय अपील में पारित किए गए निर्णय और डिक्री को विधि के सारवान् प्रश्न का गठन और ऐसे प्रश्न पर विनिश्चय किए बिना उलटा जाना अननुज्ञेय है ।

12. यह न्यायालय संहिता की धारा 100 की बाध्यताओं और धारा 101 में अंतर्विष्ट विधि की इस आज्ञा को उच्च न्यायालयों के ध्यान में लाता रहा है कि कोई द्वितीय अपील धारा 100 में वर्णित आधार के सिवाय स्वीकार्य नहीं होगी, तो भी यह प्रतीत होता है कि द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित मौलिक विधिक स्थिति की प्रायः उपेक्षा या अनदेखी की जाती है । वर्तमान अपील दुर्भाग्यवश ऐसे ही मामलों में से एक मामला है जहां उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री में उपरोक्त विधिक स्थिति की पूर्णतः अवज्ञा करते हुए हस्तक्षेप किया है ।"

18. **हरदीप कौर** बनाम **मलकियत कौर**[1] वाले मामले में भी इस न्यायालय का इसी प्रकार का मत था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय से यह अपेक्षित है कि यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि मामला ग्रहण किया जाना चाहिए और द्वितीय अपील की सुनवाई की जानी चाहिए तो वह प्रारंभिक प्रक्रम पर ही द्वितीय अपील में अंतर्वलित विधि का सारवान् प्रश्न बनाए तथा विधि के ऐसे सारवान् प्रश्न पर विनिश्चय करे ।

19. प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी, जो उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी था, ने उस समय विधि का कोई सारवान् प्रश्न नहीं उठाया था जब अपील

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 344.

का ज्ञापन फाइल किया गया था । बाद में, उन द्वितीय अपीलों में सिविल प्रकीर्ण आवेदन फाइल करके कई विधि के सारवान् प्रश्न उठाए थे जिनमें तथ्य के प्रश्न या तथ्य और विधि के मिश्रित प्रश्न भी सम्मिलित थे, जैसा कि ऊपर उद्धृत अनुसार अपील के आधारों के पैरा 13 से स्पष्ट है । द्वितीय अपील को ग्रहण करने के समय यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि अपील के ज्ञापन के पैरा 13 में विधि का सारवान् प्रश्न उठाया गया है, तो भी उच्च न्यायालय ने न तो कोई विधि का सारवान् प्रश्न बनाया और न ही यह विनिश्चित किया कि उठाए गए विधि के छह प्रश्नों में से द्वितीय अपील को ग्रहण करने के लिए उसके अवधारण हेतु कौन से विधि के सारवान् प्रश्न हैं । यहां तक कि आक्षेपित निर्णय में भी विद्वान् न्यायाधीश ने अपील का विनिश्चय करने के लिए विधि के किसी सारवान् प्रश्न को निर्दिष्ट नहीं किया है । स्पष्ट तौर पर, यह इसलिए निर्दिष्ट नहीं किया गया है क्योंकि द्वितीय अपील को ग्रहण करने के समय विधि का कोई सारवान् प्रश्न विरचित ही नहीं किया गया था, इसलिए उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा यथा अभिपुष्ट निर्णय और डिक्री को विधि का कोई सारवान् प्रश्न विरचित किए बिना उलट कर गंभीर गलती की है ।

20. क्योंकि द्वितीय अपील न्यायालय को प्रारंभिक प्रक्रम पर विधि का सारवान् प्रश्न बनाए बिना, जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अत्यावश्यक है, द्वितीय अपील को ग्रहण या विनिश्चय करने की कोई अधिकारिता नहीं है, इसलिए आक्षेपित सामान्य निर्णय को अपास्त करने के सिवाय हमारे पास कोई अन्य विकल्प नहीं है ।

21. उपर्युक्त कारणों से, हम 2003 के आरएसए सं. 3127 और 5214 आदि में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 2 अगस्त, 2011 को पारित किए गए आक्षेपित सामान्य निर्णय को अपास्त करते हैं और वादी-अपीलार्थियों के मामले में विचारण न्यायालय द्वारा पारित और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा यथा अभिपुष्ट संबंधित निर्णय और डिक्री को कायम रखते हैं । ये अपीलें मंजूर की जाती हैं । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

———

संसद् के अधिनियम

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890

(1890 का अधिनियम संख्यांक 8)[1]

[21 मार्च, 1890]

संरक्षक और प्रतिपाल्य से सम्बन्धित विधि का समेकन और संशोधन करने के लिए अधिनियम

संरक्षक और प्रतिपाल्य से सम्बन्धित विधि का समेकन और संशोधन करना समीचीन है, अतः एतद्द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :–

अध्याय 1
प्रारम्भिक

1. नाम, विस्तार और प्रारम्भ – (1) यह अधिनियम संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार [2][जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय] सम्पूर्ण भारत पर है । [3]***; [4]*** ।

---

[1] यह अधिनियम 1963 के विनियम 6 की धारा 2 और अनुसूची । द्वारा दादरा और नगर हवेली पर, 1965 के विनियम 8 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा सम्पूर्ण लक्षद्वीप संघ राज्यक्षेत्र पर और अधिसूचना सं. का. नि. 644 (अ), तारीख 24-8-1984, भारत के राज्यपत्र, असाधारण, भाग 2, खंड 3 (ii) द्वारा (1-9-1984 से) सिक्किम, पर विस्तारित किया गया :–

यह अधिनियम निम्नलिखित उपांतरणों के साथ 1968 के अधिनियम सं. 26 द्वारा पांडिचेरी पर विस्तारित किया गया :–

धारा 1 में, उपधारा (2) के पश्चात् निम्नलिखित अन्तःस्थापित करें :–

''परन्तु इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई बात पांडिचेरी के संघ राज्यक्षेत्र के रेनोसाओं को लागू नहीं होगी ।''

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा ''भाग ख राज्यों के सिवाय'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] भारतीय स्वतंत्रता (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेश अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा ''ब्रिटिश बलुचिस्तान को सम्मिलित करते हुए'' शब्द निरसित ।

[4] 1949 के अधिनियम सं. 40 की धारा 3 और अनुसूची 2 द्वारा ''और'' शब्द का लोप किया गया ।

(3) यह 1890 की जुलाई के प्रथम दिन को प्रवृत्त होगा ।

2. [**निरसन** ।] – निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

3. **प्रतिपाल्य अधिकरण और चार्टरित उच्च न्यायालयों की अधिकारिता की व्यावृत्ति** – यह अधिनियम किसी भी राज्य के, [1][[2] [जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है,] किसी सक्षम विधान-मण्डल, प्राधिकारी या व्यक्ति] द्वारा किसी प्रतिपाल्य अधिकरण से सम्बन्धित एतद्पूर्व या एतद्पश्चात् पारित हर अधिनियमिति के अध्यधीन रहते हुए पढ़ा जाएगा, और इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि वह किसी प्रतिपाल्य अधिकरण की अधिकारिता या प्राधिकार पर प्रभाव डालती है अथवा उसे किसी प्रकार से अल्पीकृत करती है, अथवा उस शक्ति को, जो [3][उच्च न्यायालय [4]***] के पास है, ले लेती है ।

4. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई बात विरुद्ध न हो, –

(1) "अप्राप्तवय" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसके बारे में भारतीय प्राप्तवयता अधिनियम, 1875 (1875 का 9) के उपबन्धों के अधीन यह समझा जाता है कि वह प्राप्तवयता को नहीं पहुंचा है ;

(2) "संरक्षक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जो अप्राप्तवय के शरीर की या उसकी सम्पत्ति की, या उसके शरीर और संपत्ति दोनों की देखरेख रखता है ;

(3) "प्रतिपाल्य" से ऐसा अप्राप्तवय अभिप्रेत है, जिसके शरीर या सम्पत्ति, या दोनों के लिए कोई संरक्षक है ;

---

[1] भारत सरकार (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "सपरिषद् गवर्नर जनरल अथवा सपरिषद् गवर्नर या लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग क राज्यों और भाग ग राज्यों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "विक्टोरिया स्टेट्यूट 24 और 25, अध्याय 104 (भारत में उच्च न्यायालय स्थापित करने के लिए अधिनियम) के अधीन कोई उच्च न्यायालय स्थापित" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग क राज्यों तथा भाग ग राज्यों में स्थापित" शब्दों का लोप किया गया ।

(4) "जिला न्यायालय" का वही अर्थ है, जो "डिस्ट्रिक्ट कोर्ट" को कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] में समनुदेशित है; और मामूली आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय इसके अन्तर्गत आता है ;

[2][(5) " न्यायालय" से –

(क) वह जिला न्यायालय अभिप्रेत है जो किसी व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने वाले आदेश के लिए इस अधिनियम के अधीन आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता रखता है ; अथवा

(ख) जहां कि ऐसे किसी आवेदन के अनुसरण में कोई संरक्षक नियुक्त या घोषित किया जा चुका है, वहां –

(i) वह न्यायालय, जिसने या उस आफिसर का न्यायालय, जिसने संरक्षक को नियुक्त या घोषित किया है या जो इस अधिनियम के अधीन संरक्षक को नियुक्त या घोषित करने वाला समझा जाता है, अभिप्रेत है ; अथवा

(ii) प्रतिपाल्य के शरीर से सम्बन्धित किसी भी मामले में, वह जिला न्यायालय अभिप्रेत है, जिसकी अधिकारिता ऐसे स्थान पर है, जहां प्रतिपाल्य तत्समय मामूली तौर पर निवास करता है ; अथवा

(ग) धारा 4क के अधीन अन्तरित किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में उस आफिसर का न्यायालय अभिप्रेत है जिसे ऐसी कार्यवाही अन्तरित की गई है ;]

(6) "कलक्टर" से जिले के राजस्व प्रशासन का भारसाधक मुख्य आफिसर अभिप्रेत है, और ऐसा कोई भी आफिसर इसके अन्तर्गत आता है, जिसे राज्य सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किसी भी स्थानीय क्षेत्र में, या व्यक्तियों के किसी वर्ग के बारे में, इस अधिनियम के समस्त या किन्हीं प्रयोजनों के लिए नाम से या पदेन कलक्टर होने के लिए नियुक्त करे ;

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) ।

[2] 1926 के अधिनियम सं. 4 की धारा 2 द्वारा खण्ड (5) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[1]* * * * ; तथा

(8) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

[2][4क. **अधीनस्थ न्यायिक आफिसरों को अधिकारिता प्रदत्त करने की और ऐसे आफिसरों को कार्यवाहियां अन्तरित करने की शक्ति** – (1) उच्च न्यायालय आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी ऐसे अधिकारी को, जो जिला न्यायालय के अधीनस्थ है, यह शक्ति कि अथवा जिला न्यायालय के न्यायाधीश को उसके अधीनस्थ किसी ऐसे आफिसर को यह शक्ति देने का प्राधिकार कि ऐसा आफिसर इस, धारा के अधीन उसे अन्तरित इस अधिनियम के अधीन की किन्हीं भी कार्यवाहियों को निपटाए, साधारण या विशेष आदेश द्वारा दे सकेगा ।

(2) जिला न्यायालय का न्यायाधीश, इस अधिनियम के अधीन की किसी भी ऐसी कार्यवाही का, जो उसके न्यायालय में लंबित है, लिखित आदेश द्वारा किसी भी प्रक्रम में अन्तरण अपने अधीनस्थ किसी भी ऐसे आफिसर को जो उपधारा (1) के अधीन सशक्त किया गया है उसे निपटाने के लिए कर सकेगा ।

(3) जिला न्यायालय का न्यायाधीश अपने न्यायालय को या अपने अधीनस्थ किसी आफिसर को, जो उपधारा (1) के अधीन सशक्त किया गया है, इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही को, जो ऐसे किसी अन्य आफिसर के न्यायालय में लम्बित है, किसी भी प्रक्रम में अन्तरित कर सकेगा ।

(4) जब कि किसी ऐसे मामले में, जिसमें कोई संरक्षक नियुक्त या घोषित किया जा चुका है, कोई कार्यवाहियां इस धारा के अधीन अन्तरित की जाती हैं तब जिला न्यायालय का न्यायाधीश लिखित आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि उस न्यायाधीश का न्यायालय अथवा वह आफिसर जिसे वे अन्तरित की गई हैं इस अधिनियम के सभी प्रयोजनों या उनमें से किन्हीं के लिए वह न्यायालय समझा जाएगा जिसने संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा की थी ।]

अध्याय 2
संरक्षकों की नियुक्ति और घोषणा

5. [**यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा की दशा में माता-पिता को नियुक्त करने की**

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा खण्ड (7) का लोप किया गया ।

[2] 1926 के अधिनियम सं. 4 की धारा 3 द्वारा अन्तःस्थापित ।

शक्ति ।] – भाग ख राज्य (विधि) अधिनियम, 1951 (1951 का 3) की धारा 3 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

6. **अन्य दशाओं में नियुक्त करने की शक्ति की व्यावृत्ति** – अप्राप्तवय की दशा में [1]*** इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि वह उसके शरीर या सम्पत्ति या दोनों का संरक्षक नियुक्त करने की किसी ऐसी शक्ति को लेती है या अल्पीकृत करती है, जो उस विधि की दृष्टि से विधिमान्य है, जिसके वह अप्राप्तवय अध्यधीन है ।

7. **संरक्षकता के बारे में न्यायालय की आदेश करने की शक्ति** – (1) जहां कि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अप्राप्तवय का इसमें कल्याण है कि –

(क) उसके शरीर या सम्पत्ति, या दोनों के लिए संरक्षक की नियुक्ति करने वाला ; अथवा

(ख) किसी व्यक्ति को ऐसा संरक्षक घोषित करने वाला ;

आदेश किया जाए, वहां न्यायालय तदनुसार आदेश कर सकेगा ।

(2) इस धारा के अधीन दिए गए आदेश से यह विवक्षित होगा कि कोई भी संरक्षक, जो विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है, हटा दिया गया है ।

(3) जहां कि कोई संरक्षक विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, वहां उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने का इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक पूर्वोक्त नियुक्त या घोषित संरक्षक की शक्तियां इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन परिविरत न हो गई हों ।

8. **आदेश के लिए आवेदन करने के हकदार व्यक्ति** – अन्तिम पूर्वगामी धारा के अधीन कोई आदेश निम्नलिखित के आवेदन पर किए जाने के सिवाय न किया जाएगा –

(क) अप्राप्तवय का संरक्षक बनने के लिए वांछा या होने का दावा करने वाला व्यक्ति ; अथवा

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "जो यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा नहीं है" शब्दों का लोप किया गया है ।

(ख) अप्राप्तवय का कोई भी नातेदार या मित्र ; अथवा

(ग) उस जिले या अन्य स्थानीय क्षेत्र का कलक्टर जिसके भीतर अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है या जिसमें उसकी सम्पत्ति है ; अथवा

(घ) जिस वर्ग का अप्राप्तवय है, उसके बारे में प्राधिकार रखने वाला कलक्टर ।

9. **आवेदन ग्रहण करने की अधिकारिता रखने वाला न्यायालय** – (1) यदि आवेदन अप्राप्तवय के शरीर की संरक्षकता के बारे में है तो वह उस जिला न्यायालय में किया जाएगा जिसकी उस स्थान में अधिकारिता है जहां अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है ।

(2) यदि आवेदन अप्राप्तवय की सम्पत्ति की संरक्षकता के बारे में है तो वह या तो उस जिला न्यायालय में किया जा सकेगा, जिसकी उस स्थान में अधिकारिता है जहां अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है या उस जिला न्यायालय में किया जा सकेगा, जिसकी अधिकारिता ऐसे स्थान में है, जहां उसकी सम्पत्ति है ।

(3) यदि अप्राप्तवय की सम्पत्ति की संरक्षकता के बारे में आवेदन ऐसे जिला न्यायालय में किया गया है, जो उस स्थान में अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय से भिन्न है, जिसमें अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है, तो यदि उस न्यायालय की यह राय है कि उसका निपटारा अधिकारिता रखने वाले किसी अन्य जिला न्यायालय द्वारा अधिक न्यायसंगत तौर पर या सुविधा से किया जा सकेगा तो वह उस आवेदन को लौटा सकेगा ।

10. **आवेदन का प्रारूप** – (1) यदि आवेदन कलक्टर द्वारा नहीं किया जाता, तो वह उस प्रकार से, जो वादपत्र के हस्ताक्षर और सत्यापन के लिए कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] द्वारा विहित है, हस्ताक्षर और सत्यापित अर्जी द्वारा किया जाएगा जिसमें निम्नलिखित का कथन होगा जहां तक कि वे अभिनिश्चित किए जा सकें –

(क) अप्राप्तवय का नाम, लिंग, धर्म, जन्म तिथि और मामूली

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) ।

निवास-स्थान ;

(ख) जहां कि अप्राप्तवय नारी है, वहां यह कि वह विवाहिता है या नहीं, और यदि है, तो उसके पति का नाम और आयु ;

(ग) अप्राप्तवय की सम्पत्ति की, यदि कोई हो, प्रकृति, स्थिति और लगभग मूल्य ;

(घ) अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति की अभिरक्षा या कब्जा रखने वाले व्यक्ति का नाम और निवास-स्थान ;

(ङ) अप्राप्तवय के निकट नातेदार कौन हैं और वे कहां निवास करते हैं ;

(च) यह कि अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति या दोनों का संरक्षक किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नियुक्त किया गया है या नहीं, जो उस विधि से, जिसके अध्यधीन अप्राप्तवय है, ऐसी नियुक्ति करने का हक रखता है या हक रखने का दावा करता है ;

(छ) यह कि अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति, या दोनों की संरक्षकता के बारे में आवेदन उस न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय से किसी समय किया गया है या नहीं, और यदि किया गया है, तो कब, और किस न्यायालय से किया गया और उसका परिणाम क्या हुआ ;

(ज) यह कि क्या आवेदन अप्राप्तवय के शरीर या उसकी सम्पत्ति या दोनों के संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा के लिए है ;

(झ) जहां कि आवेदन संरक्षक नियुक्त करने के लिए है, वहां प्रस्थापित संरक्षक की अर्हताएं ;

(ञ) जहां कि आवेदन किसी व्यक्ति को संरक्षक घोषित करने के लिए है, वहां वे आधार जिन पर वह व्यक्ति दावा करता है ;

(ट) वे हेतुक जिनसे प्रेरित होकर आवेदन किया गया है, तथा

(ठ) ऐसी अन्य विशिष्टियां, यदि कोई हों, जैसी विहित की जाएं या जिनका कथन किया जाना आवेदन की प्रकृति आवश्यक बना देती है ।

(2) यदि आवेदन कलक्टर द्वारा किया जाता है, तो वह न्यायालय को

संबोधित और डाक द्वारा ऐसे अन्य प्रकार से, जो सुविधाजनक पाया जाए, भेजे गए पत्र द्वारा होगा और उपधारा (1) में वर्णित विशिष्टियों का यावत्संभव कथन करेगा ।

(3) प्रस्थापित संरक्षक की कार्य करने के लिए रजामंदी की घोषणा आवेदन के साथ देनी होगी और उस घोषणा को उसे हस्ताक्षरित करना होगा और वह न्यूनतम दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित होगी ।

11. **आवेदन के ग्रहण किए जाने पर प्रक्रिया** – (1) यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि आवेदन पर कार्यवाही करने के लिए आधार है, तो वह उसकी सुनवाई के लिए दिन नियत करेगा, और आवेदन की और सुनवाई के लिए नियत तारीख की सूचना –

(क) की तामील कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] में निदेशित प्रकार से –

(i) अप्राप्तवय की माता या पिता पर कराएगा, यदि वे किसी [2][ऐसे राज्य में निवास करते हों, जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है],

(ii) उस व्यक्ति पर, यदि कोई हो, कराएगा जो अर्जी में या पत्र में अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति की अभिरक्षा या कब्जा रखने वाले के तौर पर नामित है,

(iii) उस व्यक्ति पर कराएगा, जो आवेदन या पत्र में संरक्षक नियुक्त या घोषित किए जाने के लिए प्रस्थापित है, जब तक कि वह व्यक्ति स्वयं ही आवेदक न हो, तथा

(iv) अन्य किसी व्यक्ति पर कराएगा जिसे न्यायालय की राय में आवेदन की विशेष सूचना दी जानी चाहिए ; तथा

(ख) न्याय सदन के और अप्राप्तवय के निवास-स्थान के किसी सहजदृश्य भाग पर लगवाएगा, और अन्यथा ऐसे प्रकार से प्रकाशित कराएगा, जैसा उच्च न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) ।

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "किसी भाग क राज्य या किसी भाग ग राज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

नियमों के अध्यधीन रहते हुए वह न्यायालय ठीक समझे ।

(2) राज्य सरकार, साधारण या विशेष आदेश द्वारा अपेक्षित कर सकेगी कि जब धारा 10 की उपधारा (1) के अधीन की अर्जी में वर्णित सम्पत्ति का कोई भाग ऐसी भूमि है जिसका अधीक्षण प्रतिपाल्य अधिकरण ले सकता है ; तब न्यायालय उस कलक्टर पर, जिसके जिले में अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है, और हर कलक्टर पर, जिसके जिले में ऐसी भूमी का कोई भी प्रभाग स्थित है, पूर्वोक्त सूचना की भी तामील कराएगा, और कलक्टर ऐसे प्रकार से, जिसे वह ठीक समझे, उस सूचना को प्रकाशित कराएगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन तामील या प्रकाशित की गई किसी सूचना की तामील या प्रकाशन के लिए कोई प्रभार न्यायालय या कलक्टर द्वारा नहीं लिया जाएगा ।

12. **अप्राप्तवय के पेश किए जाने और शरीर तथा सम्पत्ति के अन्तरिम संरक्षण के लिए अन्तर्वर्ती आदेश देने की शक्ति** – (1) न्यायालय निदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति, यदि कोई हो, जिसकी अभिरक्षा में अप्राप्तवय है उसे ऐसे स्थान और समय पर और ऐसे व्यक्ति के समक्ष, जिसे उस न्यायालय ने नियुक्त किया है, पेश करे या कराए और न्यायालय अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति की अस्थायी अभिरक्षा और संरक्षण के लिए ऐसा आदेश दे सकेगा जैसा वह उचित समझे ।

(2) यदि अप्राप्तवय ऐसी लड़की है, जिसे लोक समक्ष आने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए, तो उपधारा (1) के अधीन उसके पेश किए जाने के निदेश में यह अपेक्षा होगी कि वह देश की रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार पेश की जाए ।

(3) इस धारा की कोई भी बात –

(क) किसी अप्राप्तवय लड़की को ऐसे व्यक्ति को, जो इस आधार पर कि वह उसका पति है उसका संरक्षक होने का दावा करता है, अस्थायी अभिरक्षा में रखने को न्यायालय को तब के सिवाय, प्राधिकृत न करेगी जब कि वह लड़की अपने माता-पिता की, यदि कोई हो, सम्पत्ति से अभिरक्षा में पहले से ही है, अथवा

(ख) उस व्यक्ति को, जिसे अप्राप्तवय की सम्पत्ति की अस्थायी अभिरक्षा और संरक्षण न्यस्त है, प्राधिकृत न करेगी कि वह किसी व्यक्ति को, जो भी ऐसी सम्पत्ति पर कब्जा रखता है, विधि के सम्यक् अनुक्रम से

अन्यथा बेकब्जा करे ।

13. **आदेश करने से पहले साक्ष्य की सुनवाई** – आवेदन की सुनवाई के लिए नियत दिन को, या तत्पश्चात् यथाशक्य शीघ्र न्यायालय वह साक्ष्य सुनेगा, जो आवेदन के समर्थन में या विरोध में दिया जाए ।

14. **विभिन्न न्यायालयों में साथ-साथ कार्यवाहियां** – (1) यदि अप्राप्तवय के संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा के लिए कार्यवाहियां एक से अधिक न्यायालयों में की जाती हैं तो उन न्यायालयों में से हर एक अन्य न्यायालय या न्यायालयों में की कार्यवाहियों से अवगत कराए जाने पर, अपने समक्ष की कार्यवाहियों को रोक देगा ।

(2) यदि वे दोनों या सभी न्यायालय एक ही उच्च न्यायालय के अधीनस्थ हैं, तो वे मामले की रिपोर्ट उस उच्च न्यायालय को करेंगे, और वह उच्च न्यायालय अवधारित करेगा कि इन न्यायालयों में से किसमें अप्राप्तवय के संरक्षक की नियुक्तियों या घोषणा के बारे में कार्यवाहियां की जाएंगी ।

[1][(3) अन्य किसी दशा में, जिसमें उपधारा (1) के अधीन कार्यवाहियां रोकी जाती हैं, न्यायालय अपनी-अपनी राज्य सरकार को मामले की रिपोर्ट करेंगे और उससे मिले आदेशों से मार्गदर्शित होंगे ।]

15. **कई संरक्षकों की नियुक्ति या घोषणा** – (1) यदि उस विधि के अनुसार, जिसके अप्राप्तवय अध्यधीन है, उसके शरीर या सम्पत्ति या दोनों के लिए दो या अधिक संयुक्त संरक्षक हो सकते हैं, तो न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, उन्हें नियुक्त या घोषित कर सकेगा ।

[2]* * * *

(4) अप्राप्तवय के शरीर के लिए और सम्पत्ति के लिए पृथक्-पृथक् संरक्षक नियुक्त या घोषित किए जा सकेंगे ।

(5) यदि अप्राप्तवय की कई सम्पत्तियां हैं, तो न्यायालय यदि वह ठीक समझे, उन सम्पत्तियों में से किसी एक या अधिक के लिए पृथक्-पृथक् संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा कर सकेगा ।

---

[1] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा मूल उपधारा (3) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा उपधारा (2) और (3) का लोप किया गया ।

16. **न्यायालय की अधिकारिता से परे की सम्पत्ति के लिए संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा** – यदि न्यायालय अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के परे स्थित किसी सम्पत्ति के लिए संरक्षक नियुक्त या घोषित करता है तो, जिस स्थान में सम्पत्ति स्थित है, वहां अधिकारिता रखने वाला न्यायालय संरक्षक नियुक्त या घोषित करने वाले आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि के पेश किए जाने पर उसे सम्यक् नियुक्त या घोषित संरक्षक के तौर पर प्रतिगृहीत करेगा और आदेश को प्रभावशील करेगा ।

17. **संरक्षक नियुक्त करने में न्यायालय द्वारा विचारणीय बातें** – (1) अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित करने में इस धारा के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय उस विधि से संगत, जिसके अप्राप्तवय अध्यधीन है, उस बात से मार्गदर्शित होगा, जो उन परिस्थितियों में अप्राप्तवय के कल्याण के लिए प्रतीत हो ।

(2) यह विचार करने में कि अप्राप्तवय के लिए क्या कल्याणकर होगा, न्यायालय अप्राप्तवय की आयु, लिंग और धर्म, प्रस्थापित, संरक्षक शील और सामर्थ्य तथा अप्राप्तवय से रक्त संबंध में उसकी निकटता, मृत जनक की इच्छाओं को, यदि कोई हों और अप्राप्तवय से या उसकी सम्पत्ति से प्रस्थापित संरक्षक के किसी वर्तमान या पूर्वतम संबंधों को ध्यान में रखेगा ।

(3) यदि अप्राप्तवय इतनी आयु का है कि वह बुद्धिमत्तापूर्ण अधिमान कर सकता है तो न्यायालय उस अधिमान पर विचार कर सकेगा ।

[1]* * * *

(5) न्यायालय किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध संरक्षक नियुक्त या घोषित नहीं करेगा ।

18. **कलक्टर के पद के आधार पर नियुक्ति या घोषणा** – जहां कि कलक्टर अपने पद के आधार पर अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति या दोनों का संरक्षक होने के लिए न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया जाता है, वहां उसकी नियुक्ति या घोषणा करने वाला आदेश वह पद तत्समय धारण करने वाले व्यक्ति को, यथास्थिति, अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति, या दोनों के बारे में अप्राप्तवय के संरक्षक के तौर पर कार्य करने को प्राधिकृत और अपेक्षित

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा उपधारा (4) का लोप किया गया ।

करने वाला समझा जाएगा ।

19. **कतिपय दशाओं में न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्त न किया जाना** – इस अध्याय की कोई भी बात न्यायालय को प्राधिकृत न करेगी कि वह ऐसे अप्राप्तवय की, जिसकी सम्पत्ति प्रतिपाल्य अधिकरण के अधीक्षण के अधीन है, सम्पत्ति का संरक्षक नियुक्त या घोषित करे, अथवा –

(क) उस अप्राप्तवय के, जो विवाहिता नारी है और जिसका पति न्यायालय की राय में उसके शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है, अथवा

(ख) [1]*** उस अप्राप्तवय के, जिसका पिता जीवित है और न्यायालय की राय में अप्राप्तवय के शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है, अथवा

(ग) उस अप्राप्तवय के, जिसकी सम्पत्ति उसके शरीर का संरक्षक नियुक्त करने के लिए सक्षम प्रतिपाल्य अधिकरण के अधीक्षण के अधीन है, शरीर का संरक्षक नियुक्त या घोषित करे ।

.....क्रमशः

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा के संबंध में" शब्दों का लोप किया गया ।